ध्यान

जे. कृष्णमूर्ति

ध्यान

जे. कृष्णमूर्ति

ध्यान

ध्यान

जे. कृष्णमूर्ति

संकलन : ईवलिन ब्लाउ

प्राक्कथन

जब 'मेडिटेशन्ज़' 1979 में पहली बार प्रकाशित हुई थी, तो यह प्रश्न सामने आया था कि कृष्णमूर्ति के बहुआयामी लेखन से कतिपय अनुच्छेद उद्धृत करना तथा एक ही विषय व उससे संबद्ध उद्धरणों तक किसी पुस्तक को सीमित-केंद्रित कर देना कहां तक उपयुक्त होगा? यह कहा गया कि ऐसे उद्धरण निश्चित रूप से उनकी शिक्षाओं की संपूर्णता व गंभीरता को प्रभावित करेंगे। आखिरकार, कृष्णमूर्ति अपने जीवनकाल (1895-1986) में कभी भी किसी एक विषय को केंद्र बनाकर नहीं बोले, अपितु उन्होंने बहुत सारी विषय-वस्तुओं के धागों से एक विशाल चित्र-गलीचा बुना। क्या अध्ययन-अवलोकन के लिए उसमें से एक धागा निकाल लेना ठीक होगा, और वह भी उद्धरणों के अर्थात उस धागे के अंशों के रूप में? बरस-दर-बरस कृष्णमूर्ति की शिक्षाओं के अवगाहन से यह बात अधिकाधिक स्पष्ट होती जाती है कि उनमें ध्यान का प्रश्न सभी संदर्भों से जुड़ा है। इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि किस विषय पर चर्चा हो रही है, किंतु उस विषय के बोध के लिए एक ऐसे मन की अपरिहार्यता की बात की गई है, जो ज्ञात से, अतीत पर आधारित अटकलों-अनुमानों से मुक्त है। कृष्णमूर्ति कहते हैं कि केवल ऐसा मन ही, एक ध्यानपूर्ण मन ही जीवन के विविध प्रश्नों जैसेकि भय, द्वंद्व, संबंध, प्रेम, मृत्यु और स्वयं ध्यान में भी गहरे पैठ पाता है। इस परिवर्द्धित संस्करण में जो संकलन है, वह वार्ताओं, लेखनों तथा डायरी के पन्नों से उद्धृत है, जिनमें से कुछ का प्रकाशन पहले कभी नहीं हुआ है। ये वचन उस अद्भुत अभिव्यक्तिप्रवाह का प्रतिनिधि संकलन हैं जिससे यह सुस्पष्ट होता है कि जे. कृष्णमूर्ति के जीवन में ध्यान का कितना गहन महत्त्व था।

आमुख

मनुष्य ने अपने संघर्षों से पलायन करने के लिए अनेक प्रकार के ध्यान का आविष्कार कर लिया है। इन सबों का आधार है अभीप्सा, संकल्प एवं उपलब्धि की उत्कंठा, और इनमें निहित है द्वंद्व तथा कहीं पहुंचने के लिए संघर्ष। जान-बूझकर और सोच-समझकर किया जाने वाला यह प्रयास हमेशा संस्कारबद्ध मन की सीमाओं में ही होता है, और इसमें कोई स्वातंत्र्य नहीं है। ध्यान करने की सारी चेष्टा और सारा आयोजन ध्यान का निषेध है।

ध्यान का अर्थ है विचार का अंत हो जाना। और तभी एक भिन्न आयाम प्रकट होता है जो समय से परे है।

मार्च, 1979

—जे. कृष्णमूर्ति

ध्यानपूर्ण मन शांत होता है। यह मौन विचार की कल्पना और समझ से परे है। यह मौन किसी निस्तब्ध संध्या की नीरवता भी नहीं है। विचार जब अपने सारे अनुभवों, शब्दों और प्रतिमाओं सहित पूर्णतः विदा हो जाता है, तभी इस मौन का जन्म होता है। यह ध्यानपूर्ण मन ही धार्मिक मन है—धर्म, जिसे कोई मंदिर, गिरजाघर या भजन-कीर्तन छू भी नहीं पाता।

धार्मिक मन प्रेम का विस्फोट है। यह प्रेम किसी भी अलगाव को नहीं जानता। इसके लिए दूर निकट है। यह न एक है न अनेक, अपितु यह प्रेम की वह अवस्था है जिसमें सारा विभाजन समाप्त हो चुका होता है। सौंदर्य की तरह इसे भी शब्दों द्वारा नहीं मापा जा सकता। इस मौन से ही एक ध्यानपूर्ण मन का सारा क्रियाकलाप जन्म लेता है।
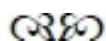
ध्यान जीवन की महानतम कलाओं में से एक है—बल्कि शायद यही महानतम कला है। यह कला संभवतः दूसरे से नहीं सीखी जा सकती—और यही इसका सौंदर्य है। ध्यान की कोई तकनीक और तरकीब नहीं होती, इसलिए इसका कोई अधिकारी और दावेदार भी नहीं होता। जब आप स्वयं का निरीक्षण करते हुए अपने बारे में सीखते हैं, अर्थात किस तरह आप खाते-पीते हैं, किस ढंग से आप चलते-फिरते हैं, क्या बातचीत और गपशप करते हैं, आपका ईर्ष्या करना, नफरत करना—जब आप अपने भीतर और बाहर की इन सारी चीज़ों के प्रति सजग और सचेत होते हैं, बिना किसी काट-छांट के, तो यह ध्यान का ही अंग है।

और यह ध्यान हर जगह और हर समय हो सकता है : जब आप किसी बस में बैठे हों या जब आप धूप और छाया से परिपूर्ण किसी वनस्थली में टहल रहे हों या जब आप पक्षियों के कलरव-गान को सुन रहे हों या जब आप अपनी पत्नी या अपने बच्चे के चेहरे को देख रहे हों।
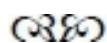
ध्यान का सहसा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हो जाना कितना अद्भुत और विचित्र है! ध्यान— जिसका न आदि है न अंत। यह वर्षा की एक बूंद के समान है। इसी बूंद में छिपी हैं सारी की सारी नदियां और जलधाराएं, इसी में समाये हैं बड़े से बड़े समुद्र और जल-प्रपात। जल की यह बूंद पृथ्वी को भी पोषण देती है और मानव को भी। इसके बिना तो यह धरती रेगिस्तान बन जाती! ध्यान के बिना हमारा हृदय भी ऊसर-बंजर और मरुस्थल हो जाता है।
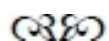
ध्यान का अर्थ यह पता लगाना है कि अपनी सारी गतिविधियों और अपने सारे अनुभवों समेत मस्तिष्क क्या पूर्णतः शांत हो सकता है। बाध्य होकर नहीं, क्योंकि जिस क्षण आप इसे बाध्य करते हैं, फिर से द्वैत आ खड़ा होता है, और वह सत्ता भी, जो कहती है, “अद्‌भुत अनुभूतियों के जगत में प्रवेश के लिए मुझे अपने मस्तिष्क को नियंत्रित कर शांत कर लेना चाहिए”—ऐसा कभी संभव नहीं होगा। लेकिन अगर आप विचार की सारी खोजों और गतिविधियों को, इसके भय, सुखों और संस्कारों को देखने, सुनने और समझने लग जायें, अगर आप अपने मस्तिष्क का निरीक्षण करने लग जायें कि यह किस तरह कार्य करता है, तो आप देखेंगे कि मस्तिष्क असाधारण रूप से शांत, मौन हो जाता है। यह शांति निद्रा नहीं है बल्कि यह प्रचंड रूप से सक्रिय है और इसीलिए शांत है। विद्युत उत्पन्न करने वाला एक बड़ा यंत्र जब अच्छी तरह कार्य करता है तो इससे शायद ही कोई ध्वनि निकलती हो। ध्वनि और शोर-गुल तभी पैदा होता है जब कहीं घर्षण होता है।
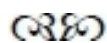
मौन और विस्तार का आपसी मेल है। मौन की अनंतता उस मन की अनंतता है जिसके भीतर का केंद्र मिट चुका है।

௸
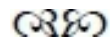
ध्यान कठिन परिश्रम है। इसके लिए आवश्यक है सर्वोच्च ढंग का अनुशासन; नियमबद्धता नहीं, अनुकरण और आज्ञापालन भी नहीं, बल्कि ऐसा अनुशासन जो सतत सजगता से उत्पन्न होता है, सजगता न केवल अपने बाहर की बल्कि भीतर की अवस्था-व्यवस्था के प्रति भी। इस तरह ध्यान एक अलगाव की क्रिया नहीं है बल्कि वह हमारे प्रतिदिन के जीवन में एक ऐसी क्रियाशीलता है जिसके लिए सहयोग, संवेदनशीलता और प्रज्ञा आवश्यक है। सही जीवनचर्या की नींव रखे बिना ध्यान महज एक पलायन बन जाता है और इसलिए इसका कोई भी मूल्य नहीं है। सही जीवनचर्या का अर्थ सामाजिक नैतिकता का अनुसरण नहीं है बल्कि इसका अर्थ है ईर्ष्या, लोभ एवं सत्ता की लालसा से मुक्ति—क्योंकि ये चीज़ें दुश्मनी, वैमनस्य पालती हैं। और इनसे मुक्ति संकल्प या इच्छाशक्ति नहीं दिला सकती, बल्कि आत्म परिचय की प्रक्रिया में इन तमाम चीज़ों के प्रति सजग होने से ही यह मुक्ति संभव है। 'स्व' की क्रियाओं और गतिविधियों को जाने बिना ध्यान ऐंद्रिय उत्तेजना बन जाता है और इसलिए इसका महत्त्व न के बराबर रह जाता है।

❧

हमेशा अधिकाधिक वृहत्, गहरी और भावातीत अनुभूतियों की तलाश में रहना 'जो है' उसकी वास्तविकता से, उसके यथार्थ से एक तरह का पलायन है; 'जो है' यानी जो हम हैं— हमारा अपना संस्कारबद्ध मन। वह मन जो जाग्रत, प्रज्ञावान और मुक्त है, उसे किसी अनुभूति की भला क्या आवश्यकता हो सकती है! वह इसे लेकर करेगा क्या! प्रकाश तो प्रकाश है, यह अधिक प्रकाश की मांग नहीं करता।
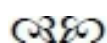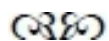
ध्यान अत्यधिक असाधारण और अद्‌भुत चीज़ों में से एक है। और अगर आपको पता नहीं है कि यह क्या है, तो आप जगमगाते रंगों, झिलमिलाते प्रकाश और छाया के जगत में जीनेवाले एक अंधे व्यक्ति के समान हैं। यह कोई बौद्धिक प्रसंग नहीं है। जब हृदय मन के भीतर प्रवेश करता है, तो मन की गुणवत्ता बिल्कुल भिन्न हो जाती है। तब मन वस्तुतः असीम होता है, न केवल अपने सोचने-विचारने और कार्य करने की क्षमता में बल्कि एक अनंत विस्तार में जीने के अर्थ में भी, जहां आप हर चीज़ का हिस्सा होते हैं।

ध्यान प्रेम का स्पंदन है। यह एक या अनेक का प्रेम नहीं है। यह जल के समान है जिसे कोई भी पी सकता है। यह जल सोने के पात्र में रखा हो या मिट्टी के, लेकिन यह कभी खत्म होने वाला नहीं है। और एक विचित्र घटना घटती है जिसे किसी मादक द्रव्य या आत्मसम्मोहन द्वारा पैदा नहीं किया जा सकता। कुछ ऐसा घटित होता है मानो मन स्वयं अपने ही भीतर प्रवेश करने लगा हो, सतह से चलकर तब तक अपने भीतर गहरे-से-गहरे उतरता चला जाए जब तक गहराई और ऊंचाई अपना अर्थ न खो दें और हर तरह की सीमा समाप्त न हो जाए। इस अवस्था में पूर्ण शांति विराजती है— संतोष नहीं जो इच्छापूर्ति से प्राप्त होता है बल्कि एक ऐसी शांति जिसमें सौंदर्य, व्यवस्था और गहनता है। और यह कोमल औरनाज़ुक इतना है कि इसे आप एक फूल की तरह मसलकर नष्ट कर दें, परंतु यह अपनी असुरक्षा और सुकुमारता के कारण ही अनश्वर और अविनाशी है। यह ध्यान दूसरे व्यक्ति से नहीं सीखा जा सकता। आप इसके बारे में कुछ नहीं जानते, यहीं से करनी होगी शुरुआत, और तब यात्रा करनी होगी निर्दोषता से निर्दोषता की ओर।

इस ध्यान का पौधा जिस मिट्टी में लगता है वह है हमारा प्रतिदिन का जीवन और इसकी पीड़ा, इसका संघर्ष और खुशी के गिने-चुने क्षण। एक ध्यानी मन को अपने ध्यान की शुरुआत यहीं से करनी चाहिए और इसमें व्यवस्था लाकर फिर एक अनंत यात्रा पर निकल पड़ना चाहिए। लेकिन अगर आप केवल व्यवस्था लाने में लगे रहे, तो यह व्यवस्था ही अपने चारों ओर एक चारदीवारी खड़ी कर लेगी जिसमें आपका मन कैद होकर रह जायेगा। इसलिए यात्रा का आरंभ आपको किसी-न-किसी तरह दूसरे छोर से, दूसरे किनारे से करना होगा, न कि सदा इसी किनारे पर खड़े रहकर इस उधेड़बुन में रहें कि नदी कैसे पार करें। तैरना न जानते हुए भी आपको पानी में कूद पड़ना चाहिए। और ध्यान का सौंदर्य ही यही है कि आपको कभी पता ही नहीं चलता कि आप कहां हैं, कहां जा रहे हैं, लक्ष्य क्या है।
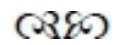
ध्यान दैनिक जीवन से कोई भिन्न घटना नहीं है। ध्यान का अर्थ यह नहीं है कि आप एक कोने में जाकर बैठ जायें, दस मिनट ध्यान करें और बाहर आकर एक कसाई बन जायें—लाक्षणिक रूप से भी और वास्तव में भी।

Ꞙ

अगर आप सोच-समझकर ध्यान करना आरंभ करते हैं, तो यह ध्यान नहीं है। इसी तरह अगर आप अच्छा बनना आरंभ करते हैं, तो आपमें अच्छाई का प्रस्फुटन कभी नहीं हो पाएगा। अगर आप विनम्रता का विकास करते हैं, तो यह विदा हो जाती है। ध्यान तो एक बयार है, जो आपकी खिड़की खुली रहने पर अनायास भीतर प्रवेश कर जाती है, लेकिन अगर आप जान-बूझकर खिड़की खुली रखते हैं और आग्रहपूर्वक इसे आमंत्रित करते हैं, तो इसका कभी आगमन नहीं होगा।
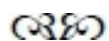
ध्यान किसी साध्य का साधन नहीं है। यह साध्य और साधन दोनों है।

ʊ३ɛ

कितनी असाधारण और अद्‌भुत चीज़ है यह ध्यान! विचार को किसी सांचे में ढालने की किसी भी तरह की कोशिश, ज़ोर-ज़बरदस्ती थका डालने वाली होती है। मौन जब चाह का विषय बन जाता है, तो उसमें बोध उत्पन्न करने की क्षमता समाप्त हो जाती है। अगर आपका मौन दिव्य और अलौकिक अनुभूतियों की एक खोज है, तो यह आत्म-सम्मोहन और भ्रमों की ओर ही ले जायेगा। विचार का प्रस्फुटन और उसका अंत—और इसी में केंद्रित है ध्यान का महत्त्व। और विचार का प्रस्फुटन स्वतंत्रता में ही संभव है, ज्ञान के अनंत विस्तार में नहीं। ज्ञान भले ही बड़ी-से-बड़ी उत्तेजना पैदा करने वाले नये अनुभवों को जन्म दे, लेकिन वह मन जिसे किसी भी प्रकार के अनुभव की तलाश है, अभी अपरिपक्व ही है। परिपक्वता समस्त अनुभव से मुक्ति है; होने और न होने में इसे अब कुछ भी प्रभावित नहीं कर सकता।

ध्यान में परिपक्वता का अर्थ है, मन को ज्ञात से मुक्त करना, क्योंकि ज्ञात ही समस्त अनुभव का नियंता और नियंत्रक है। वह मन जो अपनी ज्योति आप है, उसे किसी अनुभव की आवश्यकता नहीं है। अधिक-से-अधिक व्यापक और वृहत् अनुभव की चाह अपरिपक्वता का ही लक्षण है। ध्यान का अर्थ है ज्ञात के जगत से गुज़रकर इससे मुक्त हो जाना और अज्ञात में प्रवेश कर जाना।
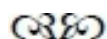
अपने लिए किसी भी सत्य की खोज व्यक्ति को स्वयं करनी है—किसी और के सहारे नहीं। अब तक हम पर गुरुओं, मार्गदर्शकों और मुक्तिदाताओं की सत्ता हावी रही है। लेकिन अगर आप सचमुच यह जानना चाहते हैं कि ध्यान क्या है, तो आपको पूर्ण रूप से समस्त सत्ता-प्रामाण्य को एक ओर हटा देना पड़ेगा।

☙
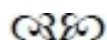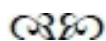
सुख -विलास और खुशियां आप किसी भी बाज़ार में मूल्य चुकाकर खरीद सकते हैं, किंतु आनंद कदापि नहीं—न अपने लिए, दूसरे के लिए। खुशियां और सुख तो समय के गुलाम हैं। आनंद का अस्तित्व केवल समग्र मुक्ति में है। सुख हो या खुशियां, अनेक रास्ते हैं उन्हें खोजने और पाने के। लेकिन वे आते हैं और चले जाते हैं। परम आनंद आह्लाद का एक अपरिचित बोध है और उसके पीछे कोई उद्देश्य नहीं होता। आप संभवतः इसे खोज नहीं सकते। एक बार इसका आगमन हो जाए, जो वस्तुतः आपके मन की गुणवत्ता पर निर्भर है, तो यह बना रहता है—समय और कारण से परे, क्योंकि समय इसकी थाह नहीं ले पाता। ध्यान सुख का अनुसरण या खुशियों की खोज नहीं है। इसके उलट, ध्यान मन की ऐसी अवस्था है जिसमें कोई धारणा या सूत्र नहीं होता, बल्कि समग्र मुक्ति होती है। और केवल ऐसे मन में उस आनंद का आगमन होता है—अनायास और अकस्मात। एक बार उसका आगमन हो जाये, फिर आप भले ही संसार में रहें—इसके समस्त सुख, क्रूरता और कोलाहल के बीच—लेकिन ये मन का स्पर्श तक नहीं कर पाएंगे। एक बार इसका आगमन हो जाये, तो द्वंद्व समाप्त हो जाता है। लेकिन द्वंद्व का अंत अनिवार्यतः समग्र मुक्ति नहीं है। और, ऐसी मुक्ति में मन का जीना ही ध्यान है। आनंद का यह विस्फोट आंखों को निर्दोष और निष्कपट बना देता है। और प्रेम तब प्रसाद और आशीष की वर्षा है।

पता नहीं आपने कभी ख्याल किया है या नहीं कि जब आप पूरी तरह से ध्यान देते हैं, तो पूर्ण मौन होता है। उस अवधान, उस होश में कोई सीमा नहीं होती, 'मैं' जैसा कोई केंद्र नहीं होता जो सजग या सावधान हो। वह होश, वह मौन ध्यान की ही अवस्था है।
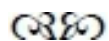
हम शायद ही किसी रोते हुए बच्चे या भौंकते हुए कुत्ते की आवाज़ को या निकट से गुज़रते हुए किसी व्यक्ति की हंसी को ध्यानपूर्वक सुनते हों। हम अपने को हर चीज़ से अलग कर लेते हैं, और इसी अलगाव से हम हर चीज़ को देखते और सुनते हैं। यह अलगाव अत्यंत विनाशकारी है, इसलिए कि यही तो द्वंद्व और अशांति की जड़ है। अगर आप पूर्ण मौन के साथ घंटों के बजने की उस ध्वनि को सुनें, तो आप उस पर सवार होकर यात्रा करने लगेंगे—बल्कि ध्वनि स्वयं आपको अपने साथ बहाकर घाटी के उस पार और पहाड़ी के ऊपर ले जायेगी। इसके सौंदर्य का अनुभव तभी होता है जब ध्वनि और आप अलग नहीं हैं—अर्थात जब आप उसी का एक हिस्सा हैं। ध्यान पृथकता और अलगाव का अंत है—किसी संकल्प, इच्छा या क्रिया द्वारा नहीं, किसी अनचखे सुख की तलाश के ज़रिये नहीं।

ध्यान वस्तुतः जीवन से कुछ अलग नहीं है। यह जीवन का ही सार है, प्रतिदिन के जीने का ही निचोड़ है। दूर कहीं बजती उन घंटियों को ध्यानपूर्वक सुनना, अपनी पत्नी के साथ राह चलते उस किसान की उन्मुक्त हंसी को सुनना, साइकिल पर भागी जा रही उस छोटी-सी लड़की के घंटी बजाने को ध्यानपूर्वक सुनना—ध्यान जीवन का यह समस्त रूप है, इसका एक खंड मात्र नहीं। ऐसा ध्यान आपको जीवन की समग्रता के प्रति उन्मुख कर देता है।
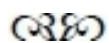
‘जो है’ उसे देखना और उसके पार चले जाना ही ध्यान है।

ঔ
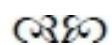
शब्द के बिना देखना अर्थात निर्विचार अवलोकन अत्यंत विलक्षण घटनाओं में से एक है। क्योंकि तब अवलोकन अत्यधिक तीव्र और सघन होता है—अवलोकन की इस क्रिया में न केवल मस्तिष्क बल्कि सारी इंद्रियां भाग लेती हैं। यह अवलोकन बुद्धि द्वारा किया गया आंशिक और खंडित अवलोकन नहीं है, न ही यह कोई भावनाओं का मामला है। इसे समग्र अवलोकन कहा जा सकता है, और यह ध्यान का अंग है। ध्यान में बोधकर्ता से रहित बोध असीम की ऊंचाई और गहराई के साथ होने वाला संवाद है। यह बोध किसी वस्तु को 'द्रष्टा के बिना देखने' की क्रिया से सर्वथा भिन्न है, क्योंकि ध्यान के बोध में न कोई विषय होता है और इसलिए न कोई अनुभव। लेकिन ध्यान तब भी घटित हो सकता है जब आंखें खुली हों और आप तमाम तरह के दृश्यों से घिरे हों। हालांकि तब ये दृश्य और वस्तुएं कोई महत्त्व नहीं रखतीं। आप उन्हें देखते हैं, लेकिन यह देखना पहचानने की प्रक्रिया नहीं है। इसका अर्थ है कि वहां कुछ अनुभव नहीं किया जाता।

ऐसे ध्यान का क्या अर्थ है? कोई अर्थ नहीं है; कोई उपयोगिता नहीं है। किंतु उस ध्यान में परम हर्ष और आह्लाद का स्पंदन है, जिसकी तुलना सुख से, मनोविलास से नहीं की जा सकती। यह आह्लाद मस्तिष्क को, हृदय को एवं आंखों को निर्दोषता की गुणवत्ता प्रदान करता है। जीवन को जब तक समग्रतः एक नयी घटना की तरह नहीं देख लिया जाता, तब तक यह बंधी-बंधायी दिनचर्या, ऊब और एकरसता का एक निरर्थक सिलसिला बना रहता है। अतः ध्यान का महत्त्व महानतम है। यह असीम और अनंत की ओर द्वार खोल देता है।

⁂

ध्यान समय के आयाम के भीतर कतई नहीं है। समय उत्क्रांति को जन्म नहीं दे सकता। समय केवल ऐसा बदलाव ला सकता है जिसमें पुनः फेर-बदल की आवश्यकता पड़ती है—सभी सुधारों का यही हाल होता है। समयजन्य ध्यान केवल बंधन निर्मित कर सकता है, मुक्ति नहीं। और मुक्ति के बिना चयन और द्वंद्व सदैव बना रहता है।

☙
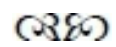
हमें समाज की संरचना को बदलना होगा। इसमें व्याप्त अन्याय, विकृत नैतिकता, युद्ध, मनुष्य और मनुष्य के बीच पैदा किये गये विभाजन, स्नेह और प्रेम का सर्वथा अभाव— यही सब विश्व के विनाश का कारण है। अगर ध्यान केवल आपका व्यक्तिगत मामला है, एक ऐसी चीज़ है जो आपके व्यक्तिगत सुख और मौज का साधन है तो यह ध्यान नहीं है। ध्यान का अर्थ है, हृदय और मन का आमूल परिवर्तन। यह तभी संभव है जब आंतरिक मौन का वह असाधारण एहसास हो —और यही एहसास धार्मिक मन को जन्म देता है। ऐसा मन उसे जानता है जो परम पुनीत है।
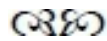
हम साथ-साथ यह अन्वेषण कर रहे हैं कि क्या आप और मैं इसी क्षण पूरी तरह बदल सकते हैं तथा एक सर्वथा विभिन्न आयाम में प्रवेश कर सकते हैं—और इसमें ध्यान की भूमिका है। ध्यान एक ऐसी स्थिति है जो अत्यधिक प्रज्ञा, संवेदनशीलता, प्रेम और सौंदर्य के सामर्थ्य की मांग करती है—यह किसी गुरु द्वारा आविष्कृत किसी प्रणाली का अनुसरण मात्र नहीं है।
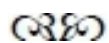
ध्यान करने का अर्थ है, समय के प्रति अबोध हो जाना।

ଔ

ध्यान संसार से पलायन नहीं है। यह स्वयं को समस्त से अलग करने या अपने आपको चारों ओर से बंद करने की क्रिया नहीं है, बल्कि यह संसार और इसके तौर-तरीकों की समझ है। संसार हमें भोजन, वस्त्र, आवास तथा सुख एवं इससे जुड़े अनंत दुखों के सिवाय और दे ही क्या सकता है!

ध्यान का अर्थ है इस संसार से बाहर चले आना। आपको बिलकुल एक परदेसी और अजनबी हो जाना होगा। तभी आपके लिए इस जगत का कुछ अर्थ है; और पृथ्वी एवं आकाश का सौंदर्य तब शाश्वत है। तब प्रेम का अर्थ सुख-विलास नहीं होता। फिर प्रेम से ही आपकी समस्त क्रिया जन्म लेती है, जो किसी तनाव, अंतर्विरोध, आत्म-तुष्टि की खोज या शक्ति और सत्ता के अहंकार का परिणाम नहीं होती।
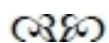
ध्यान करने के उद्देश्य से अगर आप जानबूझकर एक विशेष भावदशा या शारीरिक मुद्रा धारण कर लेते हैं, तो यह मन का ही एक खेल और खिलौना बन जाता है। अगर आप स्वयं को जीवन के दुख और अशांति से मुक्त करने का संकल्प लेते हैं, तो आप जो कुछ अनुभव करेंगे वह आपकी कल्पनाओं का ही फैलाव होगा—और यह ध्यान नहीं है। चेतन या अचेतन मन की इसमें कोई भूमिका नहीं होती, उन्हें तो ध्यान की गहराई और सौंदर्य का पता भी नहीं चलना चाहिए और अगर उन्हें भी ध्यान का पता चलने लगे, तब तो इससे अच्छा है कि आप एक रोमांटिक उपन्यास लेकर पढ़ने बैठ जायें।

ध्यान के समग्र होश में जानने और पहचानने की क्रिया नहीं होती, न ही वहां किसी बीती हुई घटना की याद होती है। वहां समय और विचार का पूर्णतः अंत हो जाता है, क्योंकि यही वह केंद्र है जो अपनी दृष्टि को खुद ही सीमित करता है।

प्रकाश के उस क्षण में विचार अपना अस्तित्व खो देता है—यहां तक कि किसी अनुभूति के लिए किया गया सचेतन प्रयास और इसका स्मरण भी अतीत का एक शब्द बनकर रह जाता है। और शब्द कभी यथार्थ नहीं होता। प्रकाश के उस क्षण में—जो समय का हिस्सा नहीं है—वह जो परम है, प्रत्यक्ष होता है। किंतु उस परम का कोई प्रतीक नहीं होता, उसका संबंध न किसी व्यक्ति से है न किसी ईश्वर से।
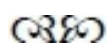
ध्यान का अर्थ यह पता लगाना है कि क्या कोई ऐसा क्षेत्र है जो ज्ञात द्वारा दूषित नहीं हुआ है, अभी उससे अछूता है।

ᯓ
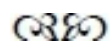
ध्यान समझ का प्रस्फुटन है। समझ समय की सीमाओं में सिमटी हुई वस्तु नहीं है। समय द्वारा समझ का जन्म कभी नहीं होता। समझ कोई क्रमिक प्रक्रिया नहीं है जिसका संग्रह सावधानी और धैर्य के साथ थोड़ा-थोड़ा करके किया जा सकता हो।

समझ या तो अभी है या कभी नहीं। यह कोई निरीह मामला नहीं है बल्कि यह एक विध्वंसकारी कौंध है। इसकी विध्वंस-क्षमता के कारण ही व्यक्ति इससे भयभीत है और वह जाने-अनजाने इससे बचकर रहता है। समझ व्यक्ति के विचार और क्रिया के ढंग को तथा उसके जीवन की पूरी दिशा को बदल दे सकती है। यह आपके लिए सुखद हो या न हो, लेकिन समझ सारे परस्पर संबंधों के लिए एक खतरा है। और समझ के बिना दुख सदा कायम रहेगा। दुख का अंत केवल स्वयं की समझ द्वारा होता है। अपने प्रत्येक विचार और भाव के प्रति तथा चेतन और अचेतन की प्रत्येक गतिविधि के प्रति सजगता द्वारा ही दुख का अंत संभव है। ध्यान प्रकट और अप्रकट चेतना की समझ है एवं ध्यान उस गतिविधि की भी समझ है जो समस्त विचार और भाव से परे है।

ꙮ
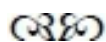
आज की सुबह उन सुंदर और सुहावनी सुबहों में से थी जो अभूतपूर्व होती हैं। सूरज अभी निकल ही रहा था और आप उसे चीड़ और यूकेलिप्टस के पेड़ों के बीच देख सकते थे। वह दूर तक फैले हुए उस जल के ऊपर था, सुनहरे रंग की चमक पैदा करता हुआ ऐसा प्रकाश जो केवल पहाड़ों और समुद्र के बीच होता है। यह एक अत्यंत शांत, स्तब्ध और स्वच्छ सुबह थी, उस अद्‌भुत प्रकाश से भरी हुई जिसे आप अपनी आंखों से ही नहीं बल्कि अपने हृदय से भी देखते हैं। और जब आप इसे देखते हैं, तो आकाश पृथ्वी के बहुत निकट होता है, और आप उसके सौंदर्य में खो जाते हैं। शायद आप जानते हों कि ध्यान कभी भी लोगों के सामने या किसी के साथ या एक समूह में नहीं करना चाहिए। ध्यान आपको केवल एकांत में करना चाहिए, रात्रि की निस्तब्धता में या उषाकाल की नीरवता में। जब आप एकांत में ध्यान करें, तो सचमुच एकांत हो। आप पूर्णतः एकाकी हों—बिना किसी विधि और पद्धति का अनुसरण किए, बिना चिंतन-मनन या मंत्र-जप के, बिना किसी विचार को अपनी इच्छानुसार आकार देते हुए। इस एकांत का आगमन तभी होता है जब मन विचार से मुक्त हो जाता है। जब इच्छाएं अथवा कोई चीज़ आप पर हावी होती है जिसके पीछे भागते हुए आपका मन अतीत और भविष्य में भटकने लगता है, तो वहां एकांत नहीं होता। केवल वर्तमान की विराटता में ही इस एकाकीपन का आविर्भाव होता है। और तब, उस शांत एकाकीपन और गोपनीयता में, जब समस्त आवागमन का अंत हो गया है अर्थात वह अवस्था जब 'द्रष्टा' अपनी चिंताओं एवं अपनी मूर्खतापूर्ण इच्छाओं और समस्याओं के साथ विदा हो गया हो—तभी उस शांत एकाकीपन में ध्यान का वह रूप प्रकट होता है जिसे शब्दों में नहीं रखा जा सकता। ध्यान तब एक शाश्वत प्रवाह और गति है।

मुझे नहीं मालूम कि आपने कभी ध्यान किया है या नहीं, आप कभी एकाकी हुए हैं या नहीं अर्थात वह अवस्था जिसमें आप केवल अपने संग होते हैं, हर वस्तु से, हर व्यक्ति से, हर विचार और वासना से बिलकुल दूर, जब आप पूर्ण रूप से एकाकी होते हैं, पृथक और अलग नहीं, किसी काल्पनिक दृश्य या स्वप्नजगत की शरण में जाकर नहीं, बल्कि इस सबसे एकदम दूर, ताकि आपके भीतर कुछ भी ऐसा न हो जिसे पहचाना जा सके, जिसे आप विचार और भाव द्वारा छू सकें—इन सबों से इतनी दूर कि इस पूर्ण एकांत में मौन ही फूल बन जाता है, मौन ही ज्योति बन जाता है, अर्थात एक समयातीत गुणवत्ता जिसकी थाह विचार नहीं ले पाता। केवल ऐसे ध्यान में प्रेम का अस्तित्व होता है। इसे प्रकट करने की चिंता मत कीजिए। यह स्वयं अपने को प्रकट करेगा। इसका उपयोग न करें। इसे क्रिया का रूप देने की कोशिश न करें। यह स्वयं क्रिया करेगा। और जब यह क्रिया करता है तो उस क्रिया में कोई पश्चात्ताप, कोई अंतर्विरोध नहीं होता अर्थात मनुष्य द्वारा अनुभव की जाने वाली कोई भी वेदना और पीड़ा नहीं होती।
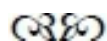
इसलिए एकाकी होकर ध्यान करें। खो जायें, डूब जायें और इतना याद रखने की भी कोशिश न करें कि आप कहां थे। अगर आप इसे याद रखने की कोशिश करते हैं, तो यह याद उस चीज़ की

होगी जो मर चुकी है। और अगर आप इसकी स्मृति को पकड़े रहते हैं, तो आप पुनः कभी एकाकी नहीं हो पाएंगे। अतः आप अनंत एकांत में, प्रेम के सौंदर्य में, निर्दोषता एवं नूतनता में डूबकर ध्यान करें—तब एक ऐसे आनंद का आविर्भाव होता है जो अक्षय और अविनाशी है।

आकाश अत्यंत नीला है, वह नीलिमा जो वर्षा के बाद प्रकट होती है। और यह वर्षा कई महीनों के सूखे के बाद आयी है। वर्षा के बाद आकाश धुलकर साफ हो गया है और पहाड़ियां आनंदविभोर हो रही हैं, तथा धरती चुप है। पेड़ के पत्ते-पत्ते पर सूर्य की किरणें चमक रही हैं और धरती का एहसास आप अत्यंत निकटता से कर रहे हैं। तो आप अपने हृदय और मन के उन गुप्त स्थानों और कोनों में जाकर ध्यान करें जहां इसके पूर्व आप कभी नहीं गये हैं।
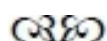
ध्यान किसी साध्य का साधन नहीं है। वहां न कोई मंज़िल है, न कहीं पहुंचना है। वह एक ऐसी गतिविधि है जो समय के आयाम में शुरू होकर समय के पार चली जाती है। ध्यान की हर विधि और पद्धति विचार को समय के साथ बांध देती है, परंतु हर विचार, हर भाव के प्रति निष्पक्ष सजगता के साथ उसकी प्रक्रिया और उसके पीछे कार्यरत प्रेरणाओं को समझना और साथ ही हर विचार और भाव को स्वतंत्रतापूर्वक फलने-फूलने और विकसित होने देना ध्यान का आरंभ है। जब विचार और भाव पूर्ण रूप से विकसित होकर तिरोहित, मृत हो जाते हैं, तब ध्यान समय के पार की एक गतिविधि है। इस गतिविधि में एक परम आह्लाद है; इस पूर्ण शून्यता में प्रेम है, और वहां प्रेम है वहां विध्वंस और सृजन है।

ध्यान मन के भीतर की वह ज्योति है जो क्रिया के मार्ग को आलोकित करती है। और इस ज्योति के बिना प्रेम का कोई अस्तित्व नहीं है।

ॐ
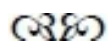
ध्यान का अर्थ प्रार्थना कतई नहीं है। प्रार्थना-याचना आत्म-दयनीयता की उपज है। जब आप किसी कष्ट और मुसीबत में होते हैं, जब आप पर कोई संकट आता है, तभी आप प्रार्थना करते हैं, लेकिन जब आपके चारों ओर प्रसन्नता और सुख-चैन होता है, तो वहां कोई याचना नहीं होती। यह आत्म-दयनीयता जो मनुष्य के भीतर इतनी गहराई में बैठी हुई है, यही हर तरह के अलगाव का कारण है। और वह जो अलग है या अपने को अलग समझता है, वह हमेशा किसी ऐसी चीज़ के साथ अपने तादात्म्य की तलाश में रहता है जो उससे अलग न हो, और इस प्रयास में वह अधिकाधिक विभाजन और दुख ही पैदा करता है। इस दुर्दशा और उपद्रव से घबराकर वह किसी परमेश्वर की पुकार और गुहार करने लगता है या अपने पति की या मन के बनाये किसी देवी-देवता की। इस पुकार का कोई उत्तर मिल भी सकता है, लेकिन वह उत्तर अलगाव करने वाली आत्म-दयनीयता की ही प्रतिध्वनि होगी।

किसी प्रार्थना को या किन्हीं शब्दों को दोहराना न केवल आत्म-सम्मोहन पैदा करता है बल्कि यह स्वयं को चारों ओर से बंद करने का एक उपाय है, जो अत्यंत विनाशकारी है। विचार द्वारा पैदा किया गया अलगाव सदा ज्ञात के क्षेत्र के भीतर ही घटित होता है, और किसी प्रार्थना का उत्तर इसी ज्ञात की प्रतिक्रिया है।

ध्यान इस सबसे अत्यंत दूर की बात है। इस क्षेत्र में विचार का प्रवेश नहीं हो पाता। यहां कोई अलगाव नहीं है और इसीलिए तादात्म्य भी नहीं है। ध्यान में सब कुछ प्रकट होता है, वहां दुराव-छिपाव का कोई स्थान नहीं है। वहां हर चीज़ साक्षात है, साफ और स्पष्ट है—और तभी प्रेम का सौंदर्य प्रकट होता है।

आज प्रातः शून्यता ही ध्यान की गुणवत्ता थी—शून्यता यानी समय और अंतराल का समग्र खालीपन। यह एक तथ्य है, धारणा या परस्पर विरोधी अनुमानों का विरोधाभास नहीं। इस अद्‌भुत शून्यता से साक्षात्कार तभी होता है जब सारी समस्याओं की जड़ समाप्त हो जाती है। और यह जड़ है विचार—विचार जो विभाजित करता है, चीज़ों को पकड़े रहता है। ध्यान में मन वस्तुतः अतीतशून्य हो जाता है, यद्यपि यह विचार के रूप में अतीत का उपयोग कर सकता है। यह दिन-भर चलता है और रात की निद्रा बीते हुए कल की शून्यता है, और इसलिए मन उसका स्पर्श कर लेता है जो समयातीत है।

ध्यान केवल शरीर और विचार का नियंत्रण नहीं है, न ही यह प्राणायाम की कोई पद्धति है। शरीर को तो स्वस्थ, तनावरहित और शांत-स्थिर होना ही चाहिए। अनुभूति की संवेदनशीलता को तीक्ष्ण बनाना एवं उसे कायम रखना आवश्यक है और फिर यह भी आवश्यक है कि मन अपने सारे शोर-गुल, उपद्रव तथा खोजने-ढूंढ़ने के अपने सभी प्रयासों सहित मिट जाये। परंतु शुरुआत शरीर से नहीं करनी होती, बल्कि आवश्यक यह है कि मन को उसके सारे मतों, पूर्वाग्रहों और स्वार्थों समेत देखा और समझा जाये। जब मन स्वस्थ, जीवंत एवं ऊर्जा और प्राण से भरा होता है, तो अनुभूति तीव्र और अत्यधिक संवेदनशील हो जाती है—तब शरीर अपनी सहज प्रज्ञा से ठीक उसी तरह कार्य करेगा जैसे इसे करना चाहिए—बशर्ते कि शरीर ने किसी आदत और रुचि विशेष का शिकार होकर अपनी सहज प्रज्ञा को नष्ट न कर लिया हो।

तो आरंभ शरीर से नहीं बल्कि मन से करना होगा—मन अर्थात विचार तथा विचार की विविध अभिव्यक्तियां। मन से आरंभ करने का अर्थ मन को एकाग्र करना नहीं है। एकाग्रता का अभ्यास विचार को संकीर्ण, सीमित और भंगुर बना देता है। लेकिन एकाग्रता तब सहज रूप से घटित होती है जब विचार के तौर-तरीकों के प्रति सजगता होती है। यह सजगता उस 'विचारक' की देन नहीं है जो हर समय चीज़ों को पकड़ने और छोड़ने में, पसंद या नापसंद करने में लगा रहता है। इस सजगता में किसी तरह का चयन नहीं होता। सजगता आंतरिक और बाह्य दोनों रूप से घटित होती है, बल्कि यह उन दोनों के बीच बहती हुई एक अंतर्धारा है—इसलिए वहां भीतर और बाहर का विभाजन समाप्त हो जाता है।

विचार भाव को खत्म कर डालता है—भाव यानी प्रेम। विचार केवल सुख प्रदान कर सकता है, और सुख की खोज में प्रेम की उपेक्षा हो जाती है। खाने और पीने का जो सुख है उसका सातत्य विचार बनाए रखता है, इसलिए विचार द्वारा संपोषित इस सुख का मात्र दमन और नियंत्रण निरर्थक है—यह केवल तमाम तरह के द्वंद्व और दबाव पैदा करेगा।

विचार पदार्थ है और इसलिए यह उस वस्तु की खोज नहीं कर सकता जो समय से परे है, क्योंकि विचार स्मृति है, और उस स्मृति में संचित कोई अनुभव उतना ही निर्जीव और निष्प्राण है जितना कि पतझड़ का एक पत्ता।

इस सबके प्रति सजगता में ही अवधान का, होश का जन्म होता है, जो अनवधान की, बेहोशी की उपज नहीं है। इस बेहोशी के कारण ही शरीर की सुखप्राप्ति वाली आदतें निर्मित हो जाती हैं तथा भावानुभूति की तीव्रता कुछ घट जाती है। अनवधान को, बेहोशी को होश में परिणत नहीं किया जा सकता। होश के अभाव के प्रति सजगता ही होश है।
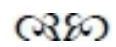
इस पूरी-की-पूरी जटिल प्रक्रिया को देखना ही ध्यान है और यह देखना अव्यवस्था में एक व्यवस्था को जन्म देता है। यह व्यवस्था उतनी ही पूर्ण है जितनी गणित में पायी जाने वाली व्यवस्था। और इसी व्यवस्था में जन्म लेती है क्रियाशीलता, यानी तत्क्षण कर्म। व्यवस्था का अर्थ योजना, विन्यास, समानुपात नहीं है—ये तो बहुत बाद की चीज़ें हैं। व्यवस्था उस मन से उत्पन्न होती है जो विचार की विषयवस्तु से आच्छादित नहीं है। विचार के चुप, मौन होने पर शून्यता होती है, यही व्यवस्था है।
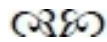
वह सचमुच एक अद्भुत नदी थी, चौड़ी, गहरी—अपने किनारों पर बहुत-से नगरों को बसाये हुए—स्वच्छंद एवं उन्मुक्त, और फिर भी स्वयं को बिना कभी खोये हुए। उसके किनारों पर समस्त जीवन का बसेरा था—हरे-भरे खेत, मैदान, जंगल, इक्के-दुक्के घर, मृत्यु, प्रेम, विध्वंस। उस पर बने लंबे-चौड़े पुल शान के साथ खड़े थे, और उनका समुचित उपयोग होता था। अन्य धाराएं और नदियां आकर उसमें मिलती थीं, लेकिन वह सभी नदियों की मां थी। वह हमेशा भरी रहती थी, सदा अपने को शुद्ध और निर्मल करती हुई, और सांझ के समय जब बादलों में रंग भर आने के कारण उसका जल सुनहरा हो जाता था, तब नदी का निरीक्षण करना किसी आशीष, किसी नियामत से कम न था। लेकिन सुदूर उन विराट चट्टानों के बीच उनके घनीभूत प्रयास से उत्पन्न जल की वह पतली-सी धारा जीवन का आरंभ थी और उसका अंत उसके किनारों एवं सागरों के पार था।

ध्यान उस नदी के समान था, अंतर केवल इतना कि इसका न कोई आरंभ था और न अंत; यह आरंभ हुआ और फिर इसका अंत ही इसका आरंभ था। इसके पीछे कोई कारण नहीं था और इसका प्रवाह ही इसका नवीनीकरण था। अपने सतत प्रवाह के कारण यह कभी ठहरता नहीं था, जमा नहीं होता था—इसलिए यह कभी पुराना नहीं हो पाता था। यह नित्य नूतन था। यह कभी भी मंद और मलिन नहीं हुआ, क्योंकि इसकी जड़ें समय के आयाम में स्थित नहीं थीं। ध्यान करना अच्छा है, इसको आरोपित करते हुए नहीं, प्रयास करते हुए नहीं, बल्कि एक पतली-सी धारा से आरंभ कर अंतराल और समय के पार चले जाना, जहां विचार और भाव नहीं पहुंच सकते, जहां अनुभव है ही नहीं।

ध्यान का अर्थ है ऊर्जा का समग्र रूप से निर्बंध और निर्मुक्त हो जाना।

ॐ

विचार अपने चारों ओर जो आकाश, जो अंतराल निर्मित करता है उसमें प्रेम का अस्तित्व नहीं होता। यह अंतराल मनुष्य को मनुष्य से अलग करता है और इसी में निहित है कुछ 'होने और बनने' की समस्त आकांक्षा, जीवन का संघर्ष, दुख और भय। ध्यान इस अंतराल का अंत है—'मैं' का अंत। तब संबंध का अर्थ बिल्कुल भिन्न हो जाता है, क्योंकि तब जो अवकाश और विस्तार जन्म लेता है उसमें 'दूसरे' का अस्तित्व नहीं होता, क्योंकि उसमें 'आपका' भी अस्तित्व नहीं होता।

तो ध्यान किसी अलौकिक और दिव्य दर्शन की खोज नहीं है, चाहे यह परंपरानुसार कितना ही पवित्र और पूज्य क्यों न हो। ध्यान तो वह अनंत अवकाश और विस्तार है जहां विचार का प्रवेश नहीं हो सकता। विचार द्वारा अपने चारों ओर निर्मित वह लघु अंतराल यानी 'मैं' हमारे लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि मन इसके अतिरिक्त कुछ नहीं जानता और इसलिए यह अपना तादात्म्य उस अंतराल की हर चीज़ के साथ करता रहता है। 'न होने' का भय भी उसी अंतराल में जन्म लेता है। लेकिन इस सबको समझ लेने के बाद मन अंतराल के, अवकाश के एक ऐसे आयाम में प्रवेश कर सकता है जहां सक्रियता ही निष्क्रियता है—और यही ध्यान है।

हमें पता नहीं है कि प्रेम क्या है, क्योंकि 'मैं' के रूप में विचार अपने चारों ओर जो एक अंतराल निर्मित कर लेता है उसमें प्रेम 'मैं' और 'मैं नहीं' का द्वंद्व है। यह द्वंद्व और यह यातना प्रेम नहीं है।

विचार प्रेम का सीधे-सीधे नकार है, और विचार उस अवकाश में प्रवेश नहीं कर सकता जहां 'मैं' नहीं होता। उस अवकाश में आशीष और प्रसाद है जिसे मनुष्य खोजता रहता है और प्राप्त नहीं कर पाता। वह इसे विचार की सीमाओं के भीतर ही खोजता है, और विचार इस आशीष के आह्लाद को नष्ट कर देता है।

ఌ
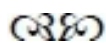
आस्था बिल्कुल अनावश्यक है, और आदर्श भी। ये दोनों उस ऊर्जा का क्षय कर डालते हैं जो तथ्य का यानी 'जो है' उसका अनावरण और उद्‌घाटन करते रहने के लिए आवश्यक है। आदर्श के समान आस्था भी तथ्य से पलायन है और पलायन में दुख का अंत नहीं है। तथ्य का क्षण-प्रतिक्षण बोध ही दुख का अंत है। इस बोध की संभावना के लिए न कोई विधि है और न पद्धति—तथ्य के प्रति निष्पक्ष सजगता से ही इस बोध या समझ का जन्म होगा। किसी विधि और पद्धति के अनुसार ध्यान करना, आप 'जो हैं' उस तथ्य की उपेक्षा है। किसी ईश्वर को पाने के लिए या किसी अलौकिक दर्शन, उत्तेजना और मनोरंजन की प्राप्ति के लिए ध्यान करने से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है स्वयं को समझना, स्वयं से संबंधित तथ्यों को तथा उनके सतत बदलाव को समझना।

ఆ
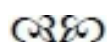
उस घड़ी ध्यान ही मुक्ति था, और यह शांति और सौंदर्य के एक अज्ञात जगत में प्रवेश करने के समान था। यह प्रतिमा, प्रतीक, शब्द या स्मृति की तरंगों से शून्य जगत था। प्रेम हर पल की मृत्यु था और हर मृत्यु प्रेम का पुनर्जीवन थी। यह प्रेम आसक्ति नहीं था। इसकी जड़ें कहीं नहीं थीं। यह प्रेम अकारण प्रज्वलित हुआ और इसकी ज्वाला में सावधानीपूर्वक तैयार की गयी चेतना की चारदीवारी और सीमाएं जलकर भस्म हो गयीं। यह विचार और भाव से परे का सौंदर्य था—वह सौंदर्य नहीं जो शब्दों में, संगमरमर में या किसी कैनवस पर अभिव्यक्त होता है। ध्यान हर्ष था, आह्लाद था और इसी के साथ थी आशीष की एक वर्षा।

प्रेम का प्रस्फुटन ही ध्यान है।

ꕥ
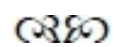
ध्यान में होने का अर्थ यह पता लगाना है कि ज्ञान का अंत हो सकता है या नहीं और इसलिए ज्ञात से मुक्ति हो सकती है या नहीं।
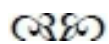
रात और दिन-भर वर्षा होती रही, और गंदला पानी नालियों और नालों से होता हुआ समुद्र में बह चला, इसे मटमैले-भूरे रंग में रंगता हुआ। समुद्र की रेत पर टहलते हुए आप विशाल लहरों को देख सकते थे। ये लहरें तेज़ी से किनारे के पास आकर भव्यपूर्ण ढंग से बल खाते हुए टूट रही थीं। आप हवा के विपरीत टहल रहे थे और तभी अचानक आपको लगा कि आकाश और आपके बीच कुछ भी नहीं है, और यह खुलापन ही अनंत विस्तार था। इतनी पूर्णता से खुला और अरक्षित होना—पहाड़ियों के प्रति, समुद्र के प्रति, मनुष्य के प्रति—यही ध्यान का सार है।

कोई भी प्रतिरोध न रखना, किसी भी चीज़ के प्रति आंतरिक रूप से अवरोध न पालना, अपनी समस्त छोटी-बड़ी उत्कंठाओं, बाध्यताओं और मांगों से—इनके सारे क्षुद्र संघर्षों और पाखंडों समेत—वस्तुतः और पूर्णतः मुक्त हो जाने का अर्थ है, जीवन में बांहें फैलाकर चलना, और उस सांझ के समय वहां समुद्री पक्षियों के बीच गीली रेत पर चलते हुए आपको निर्बंध मुक्ति के एक अद्‌भुत बोध का एहसास हुआ और साथ ही प्रेम के उस महान सौंदर्य का भी जो सिर्फ आपके भीतर या बाहर नहीं—बल्कि सर्वत्र था। हमें यह भी एहसास नहीं होता कि हमारे सिर पर सवार सुखाकांक्षाओं और उनकी पीड़ाओं से मुक्त होना महत्त्वपूर्ण है, ताकि मन एकाकी रहे। केवल वह मन जो पूर्णतः एकाकी है, खुला होता है। यह सब आपने अकस्मात महसूस किया, एक तेज़ हवा के झोंके के समान जो आपके आरपार होता हुआ ज़मीन के ऊपर से गुज़र गया। वहां आप खड़े थे—अनढके, खाली, शून्य, और इसलिए नितांत खुले हुए। इसका सौंदर्य शब्द या अनुभूति में नहीं बल्कि हर जगह प्रतीत हो रहा था—अपने आसपास, अपने भीतर, समुद्र के ऊपर तथा पहाड़ियों में। यही ध्यान है।

ध्यान एकाग्रता नहीं है। एकाग्रता का अर्थ है बहिष्कार, अलगाव, प्रतिरोध, और इसलिए एक संघर्ष। एक ध्यानपूर्ण मन एकाग्र हो सकता है—तब यह बहिष्कार और प्रतिरोध नहीं है—लेकिन एक एकाग्र मन ध्यानपूर्ण नहीं हो सकता।
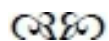
ध्यान की समझ में ही प्रेम का अस्तित्व है, और प्रेम न पद्धतियों एवं आदतों की उपज है और न किसी विधि के अनुसरण का परिणाम। विचार द्वारा प्रेम विकसित नहीं किया जा सकता। प्रेम का आविर्भाव संभवतः तभी हो सकता है जब पूर्ण मौन हो, वह मौन जिसमें मौनी या ध्यानी पूर्णतः अनुपस्थित है। और मन तभी मौन हो सकता है जब वह विचार और भाव के रूप में अपनी गतिविधि को समझ लेता है। विचार और भाव की इस गतिविधि को समझना तभी संभव है जब उसके अवलोकन में कोई निंदा न छिपी हो। इस ढंग से अवलोकन एक अनुशासन है, और इस प्रकार का अनुशासन तरलवत् और उन्मुक्त होता है। यह नियमबद्धता का अनुशासन नहीं है।

ദ്ദ
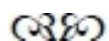
उस भोर के समय समुद्र एक झील या एक विशाल नदी की तरह था—निस्तरंग और इतना शांत कि मुंह-अंधेरे उसमें आप तारों की परछाइयों को देख सकते थे। उषा के आगमन में अभी कुछ देरी थी, इसलिए आसमान के तारे, खड़ी चट्टान और दूर शहर की टिमटिमाती रोशनियां, ये सब के सब जल की सतह पर मौजूद थे। और जैसे ही सूरज निरभ्र आकाश के क्षितिज पर प्रकट हुआ कि जल में एक सुनहरा पथ निर्मित हो गया और कैलिफोर्निया का वह अद्‌भुत और अनोखा प्रकाश चारों ओर धरती पर एवं हर एक पत्ते और घास के तृण-तृण पर बिखर गया।

उस दृश्य को ध्यान से देखते हुए आपमें एक परम निश्चलता छा गयी। स्वयं मस्तिष्क बिल्कुल शांत हो गया, उसमें अब कोई प्रतिक्रिया और गतिविधि नहीं थी, और यह असीम निश्चलता की एक अनोखी अनुभूति थी। 'अनुभूति' इसके लिए उपयुक्त शब्द नहीं है। उस मौन और निश्चलता की गुणवत्ता का अनुभव मस्तिष्क द्वारा नहीं होता; यह मस्तिष्क से परे की बात है। मस्तिष्क कल्पना कर सकता है, भविष्य के लिए योजना बना सकता है, इसकी रूपरेखा तय कर सकता है, लेकिन यह निश्चलता इसके क्षेत्र के बाहर है, समस्त कल्पना और इच्छा से परे है। इस अवस्था में आप इतने शांत और स्थिर होते हैं कि आपका शरीर पूर्णतः धरती का एक हिस्सा हो जाता है, उस हर चीज़ का हिस्सा हो जाता है जो शांत और स्थिर है।
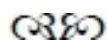
और जब पहाड़ियों से धीमी-धीमी हवा चली, तो पेड़ के पत्ते डोलने लगे, लेकिन उस स्तब्धता में, मौन की उस अद्‌भुत गुणवत्ता में कोई विघ्न और व्याघात नहीं आया। यह घर पहाड़ियों और समुद्र के बीच स्थित था, ऊंचाई से सागर को निहारता हुआ। और उस असीम शांत-स्थिर सागर का अवलोकन करते-करते आप स्वयं हर वस्तु से अभेद्य हो गये, चारों ओर मौजूद हर चीज़ का हिस्सा। आप सब कुछ थे। आप प्रकाश और प्रेम का सौंदर्य थे। पुनः, यह कहना भी गलत होगा कि "आप हर चीज़ का एक हिस्सा थे"—'आप' शब्द उपयुक्त नहीं, क्योंकि आप तो वस्तुतः वहां थे ही नहीं। आपका अस्तित्व ही नहीं था। वहां केवल वह स्तब्धता थी, प्रेम की अद्‌भुत गुणवत्ता थी, सौंदर्य था।

ꕥ

ये दो शब्द—‘तुम’ और ‘मैं’—चीज़ों को विभाजित कर देते हैं। लेकिन इस अद्भुत मौन और स्थिरता में इस विभाजन का अस्तित्व नहीं था। खिड़की से बाहर देखते हुए आपको लगा कि अंतराल और समय का अंत हो गया है। वह अंतराल जो विभाजित करता है, अपनी वास्तविकता खो बैठा था। युकेलिप्टस का वह पेड़, वह पत्ता और नीला चमकता हुआ जल—वे सब आपसे भिन्न नहीं थे।

ध्यान वस्तुतः अत्यंत सरल है। जटिल इसे हम बना देते हैं। हम इसके आसपास विचारों और धारणाओं का जाल बुन लेते हैं—यह क्या है और यह क्या नहीं है। लेकिन ध्यान इनमें से कुछ भी नहीं है। चूंकि यह अत्यंत सरल है, यह हमारी समझ में नहीं आता क्योंकि हमारा मन अत्यधिक जटिल, समय के थपेड़ों से जर्जर और समय के घेरे में बंद है। और यही मन हृदय की गतिविधि निर्धारित करता है, इसलिए तब कठिनाई शुरू हो जाती है। लेकिन ध्यान का आगमन तो सहज रूप से होता है, अत्यंत सुगमता के साथ, जब आप बाहर रेत पर टहल रहे होते हैं या खिड़की से बाहर देख रहे होते हैं या पिछली गर्मियों की धूप से झुलस गयी उन अद्भुत पहाड़ियों का अवलोकन कर रहे होते हैं। हम ऐसे पीड़ित और व्यथित मनुष्य क्यों हैं, आंखों में आंसू और होंठों पर झूठी मुस्कान लिए हुए? अगर आप उन पहाड़ियों में, जंगलों में अकेले घूमने जायें या दूर तक फैले हुए श्वेत बालू के किनारे-किनारे अकेले टहलते चले जायें, तो उस एकांत में आपको मालूम होगा कि ध्यान क्या है।

एकांत के परम आनंद का आगमन तभी होता है जब आप अकेले होने से भयभीत नहीं होते—जब आप संसार में रहते हुए भी संसार के नहीं होते, जब किसी चीज़ के प्रति आपकी आसक्ति नहीं होती। तब, आज सुबह उषा का आगमन जिस तरह हुआ था उसी तरह एकांत का यह आनंद चुपचाप चला आता है और उसी निश्चलता में एक सुनहरा पथ निर्मित कर देता है जो आरंभ में भी था, अब भी है, और सदैव रहेगा।

❧

ध्यान अज्ञात में अज्ञात की गतिशीलता है। वहां आप नहीं हैं, केवल वह गतिशीलता है। इस गतिशीलता के लिए आप अत्यंत छोटे पड़ जाते हैं या अत्यंत बड़े। इस गतिशीलता के न पीछे कुछ है न आगे। यह वह ऊर्जा है जिसे विचार रूपी पदार्थ छू नहीं सकता। विचार तो विकृति है, क्योंकि यह बीते हुए कल की उपज है; यह सदियों-सदियों के जाल में फंसा हुआ है और इसलिए यह भ्रमित है, अस्पष्ट है। आप जो चाहे कर लें, लेकिन ज्ञात कभी अज्ञात तक नहीं पहुंच सकता। ज्ञात के प्रति मृत होना ही ध्यान है।

एक नितांत मौन और निश्चल मन का ध्यान वह आशीष और प्रसाद है जिसे मनुष्य सदा खोजता रहता है। इस निश्चलता में मौन की हर गुणवत्ता मौजूद है।

❧
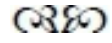
जहाँ एक बार आपने सद्‌गुण की नींव रख दी, जिसका अर्थ है परस्पर संबंधों में एक व्यवस्था, तो प्रेम और मृत्यु की ऐसी गुणवत्ता प्रकट होती है जो जीवन की समग्रता है। और तब मन असाधारण रूप से शांत हो जाता है, स्वाभाविक रूप से मौन हो जाता है, न कि यह दमन, अनुशासन और नियंत्रण द्वारा मौन किया जाता है। और वह मौन असीम रूप से समृद्ध होता है।

उसके आगे कोई भी शब्द, कोई भी वर्णन किसी काम का नहीं है। तब मन परम और पूर्ण की खोजबीन नहीं करता, वह अब सभी आवश्यकताओं से मुक्त है—क्योंकि उस मौन में वह व्याप्त है 'जो है'। और यह संपूर्ण रूप से ध्यान का प्रसाद और आशीष है।
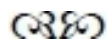
वर्षा के बाद पहाड़ियां भव्य और मनोरम हो गयी थीं। गर्मियों की तेज धूप के कारण उनका भूरा रंग अभी भी शेष था, लेकिन अब शीघ्र ही उन पर हरियाली छा जायेगी। इस भीषण वर्षा के बाद उन पहाड़ियों का सौंदर्य अवर्णनीय था। आकाश अब भी बादलों से घिरा हुआ था और हवा में सूमैक, सेज और युकेलिप्टस के पेड़ों से आती हुई गंध तैर रही थी। उनके बीच होना बड़ा भव्य-सा लग रहा था, और एक अद्‌भुत स्थिरता ने आपको चारों ओर से घेर लिया था।

सुदूर नीचे लहराते हुए समुद्र के विपरीत वे पहाड़ियां बिल्कुल स्थिर थीं। अपने चारों ओर नज़र घुमाकर देखते हुए आप महसूस करते कि नीचे उस छोटे-से घर में आप अपना सब कुछ छोड़ आये हैं—अपने कपड़े-लत्ते, अपने विचार और जीवन के निराले ढंग। यहां आप बिना किसी विचार के और बिना किसी बोझ के बिलकुल हलके होकर चल रहे थे, पूर्ण शून्यता और सौंदर्य के बोध के साथ। छोटी-छोटी वे हरी-भरी झाड़ियां शीघ्र ही और भी हरी हो जायेंगी और कुछ ही हफ्तों के भीतर उनमें तीव्रतर गंध भर आयेगी। कुछ दूरी पर बटेर बोल रहे थे और उनमें से कुछ उड़ गये। मन इस बात से अनजान था कि यह ध्यान की अवस्था में है जिसमें प्रेम प्रस्फुटित हो रहा है। कुछ भी हो, ध्यान की ज़मीन पर ही यह फूल खिल सकता है। यह सचमुच एकदम अद्‌भुत था, और आश्चर्यजनक रूप से यह सारी रात आपका पीछा करता रहा और सूरज निकलने के बहुत पहले जब आपकी नींद खुली, तो यह तब भी आपके हृदय में अपने अद्‌भुत और अविश्वसनीय आनंद के साथ उपस्थित था, बिना किसी कारण के। यह वहां अकारण था और उसकी उपस्थिति मादक थी। और यह पूरे दिन वहीं रहेगा, बिना आपके बुलाये हुए, बिना आपके आमंत्रित किये हुए।

∞

वहाँ उस सुवासित और सुगंधित बरामदे में—जबकि उषा का आगमन अभी बहुत दूर है और पेड़ अभी खामोश, मौन हैं—जो सार-तत्त्व है, वह है सौंदर्य। लेकिन यह सार-तत्त्व अनुभवगम्य नहीं है। अनुभव करने की क्रिया तो बंद हो जानी चाहिए क्योंकि अनुभव ज्ञात को ही सबल बनाता है। और ज्ञात कदापि सार-तत्त्व नहीं है।

ध्यान का अर्थ और-और अनुभूतियां कदापि नहीं है। अर्थात् ध्यान अनुभव का सातत्य नहीं है। अनुभव जो हर छोटी-बड़ी चुनौती के उत्तर से निर्मित होता है, ध्यान केवल उसका अंत नहीं है, बल्कि यह सार-तत्त्व की ओर द्वार का खुलना है, यह उस ज्वालामुखी के मुंह का खुलना है जिसकी ज्वाला जला डालती है, इतनी पूर्णता से कि राख और भस्म भी नहीं बचती, कोई भी अवशेष नहीं बचता। अवशेष तो हम स्वयं हैं। हम बीते हुए हज़ारों कल के 'हां में हां मिलानेवाले' हैं। हम अनंत स्मृतियों तथा पसंद-नापसंद और निराशा की एक सतत शृंखला हैं। समष्टि स्व और व्यष्टि स्व, ये दोनों हमारे अस्तित्व का सांचा-ढांचा हैं, और अस्तित्व विचार है तथा विचार अस्तित्व, और इसी में निहित है कभी न मिटने वाला दुख।

ध्यान की लौ और लपट में विचार का लोप और लय हो जाता है और साथ-ही-साथ भावना का भी, क्योंकि प्रेम न विचार है, न भावना। और प्रेम के बिना सार-तत्त्व का अस्तित्व नहीं है। प्रेम के बिना सिर्फ राख ही राख है जिस पर हमारा अस्तित्व आधारित है। शून्यता से ही इस प्रेम का प्रादुर्भाव होता है।

मौन की क्रिया ही ध्यान है।

ഏ൭
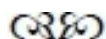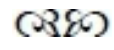
ध्यान का न आरंभ है और न अंत। इसमें न कोई उपलब्धि है और न असफलता, न संग्रह है और न त्याग। यह ऐसी गतिशीलता है जिसकी कोई परिणति नहीं, जिसका कोई अंजाम नहीं और इसलिए यह समय और अंतराल के बाहर तथा पार है। वस्तुतः ध्यान की अनुभूति ध्यान का निषेध है, क्योंकि अनुभवकर्ता समय और अंतराल से तथा स्मृति और पहचान से बंधा होता है। सच्चे ध्यान की बुनियाद वह निश्श्रेष्ट सजगता है जो सत्ता और महत्त्वाकांक्षा से तथा ईर्ष्या और भय से समग्र मुक्ति है। बिना इस मुक्ति के तथा बिना स्वयं को जाने-समझे ध्यान का कोई महत्त्व नहीं, कोई मूल्य नहीं। और स्वयं को जानना और समझना तब तक संभव नहीं है जब तक चयन की, पसंद-नापसंद की स्थिति है। चयन का अर्थ है द्वंद्व, और इस द्वंद्व के रहते 'जो है' उसकी समझ संभव नहीं है। किसी रोमानी आस्था और विश्वास की शरण में चले जाना अथवा कल्पनाओं और भ्रांतियों में भटक जाना ध्यान नहीं है। ध्यान के लिए यह आवश्यक है कि मस्तिष्क अपने ऊपर से मिथकों, भ्रांतियों और सुरक्षा के प्रत्येक आवरण को हटा ले तथा उनकी असत्यता की वास्तविकता का सामना करे। ध्यान-भंग जैसी कोई चीज़ नहीं होती, क्योंकि ध्यान की गतिविधि में हर चीज़ समाविष्ट है। फूल के अर्थ में रूप, रंग, गंध और सौंदर्य, सभी समाविष्ट हैं। अर्थात फूल इन सबों का संयोग है। आप इसके टुकड़े-टुकड़े कर डालिए, वास्तविक तौर पर या शाब्दिक तौर पर, तब फूल नहीं रहेगा, रह जायेगी 'जो था' उसकी केवल एक याद, और वह याद फूल कदापि नहीं है। ध्यान का अर्थ है वह समग्र फूल जो अपने सौंदर्य में, अपने खिलने और मुरझाने में समाहित है।

❧
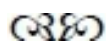
ध्यान है विचार से मुक्ति तथा सत्य के आनंद में गतिशीलता।

ᘛ

प्रभात की उस बेला में सब कुछ शांत और नीरव था; कोई पक्षी, या पेड़ का एक पत्ता तक नहीं हिल-डुल रहा था। ध्यान जो किन्हीं अज्ञात गहराइयों में शुरू हुआ, अपनी तीव्रता और वेग में प्रचंड रूप से बढ़ते हुए इसने विचार और भाव को जड़ समेत उखाड़ फेंका, मस्तिष्क को ज्ञात और ज्ञात की छाया से पूर्णतः खाली करके समग्र मौन में स्थिर कर दिया। यह चीर-फाड़ और शल्य-क्रिया की एक घटना थी जिसमें कोई शल्य-चिकित्सक नहीं था। यह शल्य-क्रिया उसी तरह चलती रही जैसे कोई शल्य-चिकित्सक कैंसर रोग की शल्य-क्रिया करता है, हर उस ऊतक को काटकर अलग कर देता है जो ज़रा भी दूषित या प्रभावित है ताकि रोग पुनः न फैलने पाये। यह शल्य-क्रिया अर्थात यह ध्यान कोई एक घंटे तक चलता रहा। इस ध्यान में कोई ध्यानी या ध्यानकर्ता नहीं था। ध्यानकर्ता अपने लोभ, अहंकार, अपनी महत्त्वाकांक्षाओं और मूर्खताओं के कारण केवल हस्तक्षेप करता है। ध्यानकर्ता विचार ही है जो इन संघर्षों और संघातों में पला-बढ़कर विकसित होता है। इसलिए ध्यान में विचार का समग्र रूप से अंत होना ज़रूरी है। यही ध्यान की बुनियाद है।
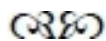
ध्यान करना समय का अतिक्रमण करना है। समय वह दूरी है जिसे विचार अपनी उपलब्धियों के दौरान तय करता है। यह दूरी हमेशा पुराने मार्ग से ही तय की जाती है। यह पुराना मार्ग भले ही नये ढंग से रंगा-पुता हो, इसके नज़ारे भी नये हों, लेकिन यह वही पुराना रास्ता है जो कहीं पहुंचता नहीं—सिवाय दुख और दर्द के।

जब मन समय का अतिक्रमण कर जाता है तो सत्य विचार और कल्पना की वस्तु नहीं रह जाता। तब आनंद मात्र सुख के अनुभव पर आधारित कोई धारणा नहीं है—वह एक यथार्थ है, न कि शब्दों का खेल।

मन का समयरहित हो जाना ही सत्य का मौन है, और इसे देखना ही करना है। अतः देखने और करने के बीच कोई विभाजन नहीं होता। देखने और करने के बीच के अंतराल में ही संघर्ष, अशांति और दुख जन्म लेता है। वह जो समयरहित है, वह अनंत है, शाश्वत है।

~
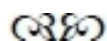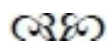
उषा का आगमन मंथर गति से हो रहा था। आसमान में तारे अब भी जगमगा रहे थे और वृक्ष अभी तक अपने में खोये हुए थे। कहीं से कोई पक्षी नहीं बोल रहा था, यहां तक कि छोटे-छोटे उल्लू भी नहीं जो रात-भर इस पेड़ से उस पेड़ पर हड़कंप मचाये फिरते थे। समुद्र की गर्जना के सिवाय चारों ओर अद्भुत नीरवता छायी हुई थी। गीली ज़मीन, गलते हुए पत्तों तथा बहुत सारे फूलों की महक चारों ओर फैल रही थी; हवा अत्यधिक शांत और स्थिर थी और गंध हर जगह मौजूद थी। धरती प्रभात की प्रतीक्षा कर रही थी और आने वाले दिन की भी; प्रत्याशा, धैर्य और अद्भुत नीरवता चारों ओर व्याप्त थी। ध्यान भी उसी नीरवता के साथ चलता रहा और वह नीरवता प्रेम थी। यह किसी वस्तु या किसी व्यक्ति का प्रेम नहीं था, न ही यह प्रेम कोई प्रतिमा और प्रतीक या शब्द और चित्र था। यह निपट प्रेम था, बिना भावुकता के, बिना भावप्रवाह के। यह कुछ ऐसा था जो नग्न, तीव्र और स्वयं में पूर्ण था; इसका न कोई मूल था और न कोई दिशा थी। दूर कहीं से आता हुआ उस पक्षी का कलरव वह प्रेम था। वह कलरव-ध्वनि ही दिशा और दूरी थी। वह वहां समय और शब्द से परे था। यह प्रेम कोई भाव नहीं था जो मुरझा जाता है और जो क्रूर होता है। किसी प्रतीक, किसी शब्द का तो विकल्प ढूंढ़ा जा सकता है, लेकिन इस प्रेम का नहीं। नग्न और अनावृत होने के कारण यह सर्वथा अरक्षित था और इसलिए यह अक्षय और अविनाशी था। इसके पास उस अन्यत्व और अज्ञेयता की दुर्लभ शक्ति थी और वह समुद्र के पार से और पेड़ों से होकर आ रहा था। ध्यान उस समुद्र की गर्जना था जो तटों पर वज्राघात कर रहा था। परम शून्यता में ही प्रेम का अस्तित्व हो सकता है। सुदूर क्षितिज पर उषा की लालिमा प्रकट होने वाली थी और अंधेरे में खड़े वृक्षों की कालिमा और भी सघन हो गयी थी। ध्यान में पुनरावृत्ति यानी आदत का सातत्य नहीं होता; वहां हर ज्ञात चीज़ की मृत्यु है और अज्ञात का प्रस्फुटन है। तारे अस्त हो चले थे और सूर्य के उदित होते ही बादल भी जग पड़े।

ध्यान है—चेतना को उसकी अंतर्वस्तु से, ज्ञात से, ‘मैं’ से रिक्त करना।

ꕥ
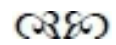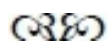
ध्यान सुरक्षा का विध्वंस है। और ध्यान में विराट सौंदर्य छिपा है, उन वस्तुओं का सौंदर्य नहीं जो मनुष्य या प्रकृति द्वारा निर्मित हैं बल्कि मौन का सौंदर्य। यह मौन वह शून्यता है जिससे समस्त चीज़ें निकलती हैं, और पुनः उसमें समा जाती हैं, और उसी में समाहित हैं उनके प्राण और अस्तित्व। वह अज्ञेय है, बुद्धि और भावना की वहां तक पहुंच नहीं है। वहां तक पहुंचने के लिए कोई मार्ग नहीं है, इसलिए पहुंचने की हर विधि और उपाय एक लोभी मस्तिष्क द्वारा किया गया आविष्कार मात्र है। इस धूर्त और मतलबी 'स्व' द्वारा खोजे गये साधनों और उपायों को पूर्णतः मिटा देना आवश्यक है; आगे की ओर या पीछे की ओर जाने का, अर्थात समय की पूरी प्रक्रिया का अंत होना ज़रूरी है, बिना कल की प्रतीक्षा किए। ध्यान विध्वंस है; यह उनके लिए एक खतरा है जो एक सतही जीवन बिताना चाहते हैं, जो कल्पना और पौराणिकता में जीना चाहते हैं।

ध्यान द्वारा लायी गयी मृत्यु नूतन का अमरत्व है।

ꕥ
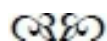
अगर आप इसका साक्षात्कार कर सकें तो आप पायेंगे कि यह कुछ ऐसा है, जो अत्यंत अद्भुत है। मैं इसके विस्तार में जा सकता हूं, लेकिन किसी वस्तु का वर्णन स्वयं वह वर्णित वस्तु तो नहीं है! यह सब आप ही को सीखना है, स्वयं का अवलोकन करते हुए—कोई पुस्तक, कोई गुरु आपको इस संबंध में कुछ नहीं सिखा सकता। किसी पर निर्भर न रहें, आध्यात्मिक संस्थाओं की शरण में न जायें। व्यक्ति को यह सब अपने भीतर सीखना है। और वहां मन को ऐसी बातों का पता लगेगा जो अद्भुत हैं। किंतु उसके लिए आवश्यक है कि कोई भी विखंडन और विभाजन न हो, अतः वहां परम अडिगता, चपलता और गतिशीलता हो। ऐसे मन के लिए समय का अस्तित्व ही नहीं होता और इसलिए जीने का अर्थ ही कुछ और होता है।

ध्यान के बारे में कोई भी सत्ता-प्रामाण्य तो ध्यान का निषेध ही है। ध्यान में समस्त ज्ञान का, धारणाओं तथा उदाहरणों का कोई स्थान नहीं होता। ध्यानकर्ता, अनुभवकर्ता, विचारक का संपूर्ण समापन ही ध्यान का सार है। यह मुक्ति ध्यान का दैनिक कृत्य है। अवलोकनकर्ता अतीत ही है; उसका आधार समय है, उसके विचार, छवियां और साये समय से बंधे होते हैं। ज्ञान समय है और ज्ञात से मुक्ति ही ध्यान का प्रस्फुटन है, सत्य तक पहुंचने के लिए, अथवा ध्यान के सौंदर्य को छूने के लिए कोई प्रणाली नहीं होती और इसीलिए कोई दिशा-निर्देश भी नहीं होते। किसी अन्य का, उसके उदाहरण का, उसके शब्द का अनुसरण करना तो सत्य का बहिष्कार है।

सिर्फ संबंध के आईने में ही आप 'जो है' का चेहरा देख पाते हैं। द्रष्टा ही दृश्य है, देखने वाला ही देखने का विषय है। व्यवस्था के बिना—सदाचार से आयी व्यवस्था के बिना—ध्यान का तथा उस बारे में औरों के अंतहीन दावों का कतई कोई मतलब नहीं है; वे सब पूर्णतया अप्रासंगिक हैं। सत्य की कोई परंपरा नहीं होती, इसे आगे किसी को सौंपा नहीं जा सकता।

ૡ
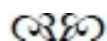
ध्यान को एक जटिल मसला न बनाएं; यह तो सचमुच बहुत सरल है, और चूंकि यह सरल है, इसलिए बहुत सूक्ष्म है। यदि मन हर तरह की रंग-बिरंगी तथा रोमानी धारणाओं के साथ इसका अन्वेषण करेगा, तो उसे इसकी सूक्ष्मता हाथ आने से रही। ध्यान तो वस्तुतः अज्ञात में प्रवेश है, और इसलिए मन द्वारा दिन-भर में या हज़ार दिनों में हासिल किये गये ज्ञात का, स्मृति का, अनुभव का, ज्ञान का अंत होना ज़रूरी है। क्योंकि एक मुक्त मन ही अपरिमेय के अंतरतम में पैठ सकता है। तो ध्यान यह प्रवेश भी है और अतीत का अंत भी।

दिक्कत तब शुरू होती है जब हम पूछते हैं कि अतीत का अंत कैसे करें। 'कैसे' वास्तव में है ही नहीं। 'कैसे' में कोई विधि, कोई प्रणाली निहित है और इसी विधि और प्रणाली ने ही तो मन को संस्कारबद्ध किया है। बस इसके सत्य को देख लें। मुक्ति आवश्यक है, न कि 'कैसे' मुक्त हों। 'कैसे मुक्त हों' तो आपको महज़ किसी खूंटे से बांध देता है।
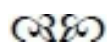
यदि आपको ध्यान के अर्थ का, इसके सौंदर्य का पता नहीं है, तो आपको जीवन के बारे में कुछ भी मालूम नहीं है। हो सकता है आपके पास नयी से नयी कार हो, हो सकता है आप पूरी दुनिया में मन-मुताबिक घूमने-फिरने में समर्थ हों, किंतु यदि आप यह नहीं जानते कि ध्यान का वास्तविक सौंदर्य, स्वातंत्र्य और आनंद क्या है, तो आप जीवन के एक बहुत बड़े हिस्से से वंचित हैं। इसका अभिप्राय आपसे यह कहलवा लेना नहीं है, "मुझे ध्यान करना सीखना ही होगा।" ध्यान तो एक स्वाभाविक स्थिति है जो घटित होती है। वह मन जो खोज-बीन कर रहा है, अपरिहार्य रूप से इस तक आता ही है; ऐसा मन जो कि सजग है, जो अपने आप में 'जो है' का अवलोकन कर रहा है, वह स्व को समझ रहा है, स्व को जान रहा है।

ꕥ

आप अगले दस हज़ार साल तक पीठ सीधी करके ठीक आसन में बैठ कर सही ढंग से सांस लेते हुए प्राणायाम और उस तरह की तमाम चीज़ें कर सकते हैं, तो भी—सत्य क्या है—इसके बोध के आस-पास तक भी आप नहीं पहुंच पाएंगे, क्योंकि आपने अपने-आप को, अपनी सोच के तरीके को, अपने जीने के ढंग को लेश-मात्र भी नहीं समझा है। आपने अपने दुख का अंत नहीं किया है और तब भी आप चाहते हैं कि आपको संबोधि उपलब्ध हो जाए। आप अपने शरीर को हर तरह से मोड़-घुमा कर करतब कर सकते हैं, यह सब शायद लोगों को बहुत आकर्षित करता है क्योंकि इससे शक्ति हासिल होती है, प्रतिष्ठा मिलती है। अब ये सारी शक्तियां ऐसे ही हैं जैसे सूरज के सामने टिमटिमाते दीये; ये दीये की रोशनी की तरह हैं, जबकि सूरज पूरी आभा के साथ आलोकित है।

ঙ্গ
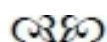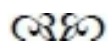
यह समझने के लिए कि ध्यान क्या है, सम्यक व्यवहार की नींव रखी जानी ज़रूरी है। उस नींव के बिना, ध्यान वास्तव में आत्म-सम्मोहन का ही रूप है। क्रोध, ईर्ष्या, डाह, लोभ, स्वामित्व, घृणा, स्पर्द्धा, सफलता की चाह से—और ऐसे ही सही ठहरा दिये गये तमाम नैतिक व सम्मानित लक्षणों से—मुक्त हुए बिना, सही नींव रखे बिना, व्यक्तिगत भय, चिंता, लालच और इस तरह की तमाम विकृतियों से वस्तुतः मुक्त दैनिक जीवन जिये बिना, ध्यान का कुछ खास मतलब नहीं है।
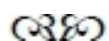
ध्यान में निहित है मन का ऐसा गुण-धर्म जो पूरी तरह अवधान दे सके, अतएव ऐसा मन जो पूरी तरह स्थिर, निश्चल हो सके। मन हमेशा बड़-बड़ करता रहता है, हमेशा बातें करता रहता है, या तो अपने-आप से, अपने ही भीतर, या किसी और से; यह हमेशा हलचल मचाये रखता है। जो मन निरंतर बड़बड़ाता रहता है, वह किसी भी चीज़ का प्रत्यक्ष बोध कैसे कर सकता है। जो मन पूरी तरह से अवधानयुक्त है, सावधान है, केवल उसी मन में अवलोकन के लिए संपूर्ण ऊर्जा होती है, क्योंकि अवलोकन करने के लिए आपमें प्रबल ऊर्जा होनी चाहिए। धार्मिक साधु-संत व अन्य लोग कहते हैं कि आप ऊर्जा बरबाद नहीं कर सकते; इसलिए यदि आप संत बनना चाहते हैं तो सेक्स वर्जित है। और जब आप यौनवर्जना का जीवन जीते हैं और ब्रह्मचर्य की कसमें खा लेते हैं तो आपमें भयंकर उथल-पुथल होती है क्योंकि आप पूरी जैविक प्रणाली को नकार रहे होते हैं, और इसमें ऊर्जा की बरबादी है। आप बस इससे लड़ते-जूझते रहते हैं। या फिर आप दूसरी अति पर चले जाते हैं, आप इस सब में बह जाते हैं, रत हो जाते हैं जो कि ऊर्जा की बरबादी का एक अन्य प्रकार है। जबकि यदि आप अवधानयुक्त हैं, ध्यानपूर्वक हैं, तो यह ऊर्जा के समग्र संयुक्तीकरण का सर्वोत्कृष्ट रूप है। इसका अर्थ है तीव्रता, उत्कटता, और यदि आप बरबादी में लगे हैं तो आप उत्कट नहीं हो सकते। मन बिना किसी प्रयास के नितांत मौन हो सकता है, और इसलिए ऐसा मन ऊर्जा से भरा होगा, जिसमें कोई विकृति नहीं होगी।

ध्यान एक अद्‌भुत घटना है यदि आपको एक ऐसे मन का अभिप्राय स्पष्ट हो पाए जो 'ध्यान में' है, बजाय इस आकलन के कि 'ध्यान कैसे करें'। जब हम यह जान लेंगे कि ध्यान क्या नहीं है, तो हम जान पाएंगे कि ध्यान क्या है। निषेध के द्वारा आप विधिपरक तक आते हैं, जबकि यदि आप विधिपरक का अनुसरण करते हैं तो यह आपको किसी बंद गली तक ही ले जाता है। हमारा कहना है कि ध्यान किसी प्रणाली का अभ्यास नहीं है। वैसा तो मशीनें भी कर सकती हैं। अतः प्रणालियां ध्यान नामक अद्‌भुत स्थिति को, उसके सौंदर्य को, उसकी गहनता को प्रकट नहीं कर सकतीं।

ध्यान किसी शब्द की पुनरावृत्ति, किसी दृश्यबिंब का अनुभव नहीं है, न ही यह मौन का संवर्धन है। माला और शब्द, बड़बड़ाते मन को शांत तो कर देते हैं पर ऐसी शांति एक प्रकार से स्वयं को सम्मोहित करना ही है। वह तो आप कोई शामक ओषधि लेकर भी कर लेते।

विचार के किसी प्रारूप में, सुख के किसी सम्मोहन में स्वयं को आवृत कर लेना ध्यान नहीं है। ध्यान का कोई आरंभ नहीं है, तथा इसलिए इसका कोई अंत भी नहीं है।

यदि आप कहते हैं, "मैं आज से विचारों पर नियंत्रण करना, ध्यानस्थ आसन में शांतिपूर्वक बैठना, नियमित श्वास-क्रिया का अभ्यास करना आरंभ करूंगा", तो आप उन चालबाज़ियों में फंसे हैं जिनसे व्यक्ति स्वयं को धोखा दिया करता है। ध्यान किसी आडंबरपूर्ण धारणा या प्रतिमा में तल्लीन हो जाने की अवस्था नहीं है : यह तो व्यक्ति को बस क्षण-भर के लिए शांत कर देता है, जैसे कि कोई बच्चा किसी खिलौने में तल्लीन होकर उतने समय के लिए शांत हो जाता है, परंतु जैसे ही वह खिलौना रुचिकर नहीं रहता, उसकी बेचैनी और शरारत फिर शुरू हो जाती है। ध्यान किसी काल्पनिक आनंद की ओर ले जाने वाले किसी अदृश्य पथ का अनुसरण नहीं है। ध्यानस्थ मन तो देख रहा है, अवलोकन कर रहा है, सुन रहा है, बिना शब्द के, बिना टिप्पणी के, बिना अभिमत के; ऐसा मन सारा दिन अपने समस्त संबंधों में जीवन की गतिमयता के प्रति अवधानयुक्त रहता है। और रात को, जब पूरा अवयव-संस्थान, शरीर विश्राम में होता है, तो ध्यानस्थ मन को स्वप्न नहीं आते क्योंकि यह सारा दिन जागा रहा है। स्वप्न तो केवल उन्हें आते हैं जो असजग हैं, केवल अधजगे लोगों को अपनी अवस्थाओं की ओर इंगित किये जाने की दरकार होती है। किंतु मन जब जीवन की गति को, बाहर भी और भीतर भी, देखता है, सुनता है, तो मन में एक ऐसे मौन का आगमन होता है जो विचार द्वारा निर्मित नहीं है।

यह वैसा मौन नहीं है जिसका अवलोकनकर्ता अनुभव करता है। यदि वह इसे अनुभव करता है और पहचान लेता है, तो यह मौन नहीं रह जाता। ध्यानस्थ मन का मौन पहचान की सीमाओं में नहीं होता, क्योंकि इस मौन की कोई सीमा है ही नहीं। यह केवल मौन है; इसमें विभाजन का अंतराल समाप्त हो जाता है।

यदि मैं ध्यान करता हूं और जो मैं पहले से ही सीख चुका हूं, जान चुका हूं, उसे ही जारी रखता हूं, तो मैं अतीत में अपनी संस्कारबद्धता के क्षेत्र में ही रह रहा होता हूं। उसमें कोई स्वतंत्रता नहीं है। मैं जिस कैदखाने में रह रहा हूं उसे सजा-संवार सकता हूं, उस कैदखाने में काफी कुछ कर सकता हूं, लेकिन तब भी सीमा बनी रहती है, अवरोध बना रहता है। तो मन को यह पता लगाना होगा कि क्या मस्तिष्क की कोशिकाएं, जो लाखों-लाखों वर्षों में विकसित हुई हैं, पूर्णतः मौन हो सकती हैं, और एक ऐसे आयाम को स्पर्श कर सकती हैं, जिसे वे नहीं जानतीं। जिसका अर्थ है, क्या मन पूरी तरह निश्चल हो सकता है?

ध्यान का एक पक्ष है समस्त द्वंद्व को पूरी तरह से मिटा देना, भीतर से, और इसलिए बाहर से भी।

ꕥ
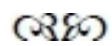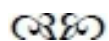
ध्यान में निहित है एक ऐसा मन जो इतने आश्चर्यजनक रूप से स्पष्ट है कि किसी भी तरह का आत्म-छलावा उसमें टिक नहीं पाता। व्यक्ति स्वयं को अनंत रूप से धोखा दे सकता है, और आम तौर से ध्यान, तथाकथित ध्यान, आत्म-सम्मोहन का ही एक प्रकार है : अपने- अपने संस्कारों के अनुरूप दृश्यबिंबों को देखना। यह इस कदर सीधी-सी बात है—यदि आप ईसाई हैं तो आप अपने ईसामसीह को देखेंगे, अगर आप हिंदू हैं तो आप अपने कृष्ण को या अपने असंख्य देवी-देवताओं में से जिस किसी का भी दर्शन कर लेंगे। पर ध्यान इन चीज़ों में से कुछ भी नहीं है। ध्यान मन की संपूर्ण निश्चलता है, मस्तिष्क का संपूर्ण मौन।

ध्यान की नींव दैनिक जीवन में रखी जानी ज़रूरी है, इस बात में कि व्यक्ति व्यवहार कैसे करता है, सोचता किस तरह है। ऐसा नहीं हो सकता कि व्यक्ति हिंसक हो, और ध्यान भी करे; उसका कुछ मतलब नहीं है। यदि मानसिक रूप से किसी प्रकार का भी भय है, तो ज़ाहिर है कि ध्यान तब पलायन ही है। मन की निश्चलता के लिए, इसके पूर्ण मौन के लिए एक असाधारण अनुशासन की आवश्यकता होती है—दमन का, अनुपालन का या किसी सत्ता के अनुसरण का अनुशासन नहीं, बल्कि वह अनुशासन अथवा सीखना जो विचार की प्रत्येक गतिविधि पर ध्यान देते हुए दिन-भर चलता रहता है। तब उस मन में एकत्व का, अभेद का धार्मिक गुण होता है। उससे फिर ऐसा कर्म संभव होता है जिसमें अंतर्विरोध नहीं होता।
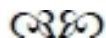
ध्यान का एक विलक्षण पक्ष यह है कि कोई घटना अनुभव में नहीं बदल पाती। वह तो बस घटित होती है आसमान में किसी नये सितारे की तरह, स्मृति द्वारा उस पर अधिकार जमाये और पकड़ बनाये बिना, पसंद और नापसंद के तौर पर पहचान और प्रतिक्रिया की आदतन प्रक्रिया के बिना। हमारी तलाश हमेशा बाहर की ओर जाती है; जो मन किसी अनुभव की तलाश में है, वह बाहर ही जा रहा है। भीतर की ओर जाना तलाश बिल्कुल नहीं है; यह तो प्रत्यक्ष बोध करना है। प्रतिक्रिया हमेशा दोहराव भरी होती है, क्योंकि यह हमेशा स्मृति के उसी भंडार से आती है।

महत्त्वपूर्ण है विचार को समझना, उसके स्रोत, उसके आरंभ को समझना, जो अपने ही भीतर है—न कि विचार को नियंत्रित करना। अर्थात मस्तिष्क स्मृतियों का संचय करता है—आप यह स्वयं देख सकते हैं, आपको इसके बारे में किताबें पढ़ने की ज़रूरत नहीं है। यदि मस्तिष्क ने स्मृतियां संचित न की होतीं, तो यह सोचने में बिलकुल भी सक्षम न होता। वह स्मृति अनुभव का, ज्ञान का परिणाम है—वह अनुभव, वह ज्ञान आपका हो या समुदाय का, परिवार का या प्रजाति इत्यादि का। विचार स्मृति के उसी भंडार से उभरता है। तो विचार कभी भी मुक्त नहीं है, यह हमेशा पुराना है। विचार की स्वतंत्रता जैसा कुछ नहीं होता। विचार अपने-आप में कभी स्वतंत्र नहीं हो सकता; यह स्वतंत्रता के बारे में बातें कर सकता है, पर अपने-आप में यह विगत स्मृतियों, अनुभवों और ज्ञान का परिणाम है, इसलिए यह पुराना ही होता है। तो भी व्यक्ति के पास जानकारी का यह संचय ज़रूरी है, नहीं तो वह कार्य नहीं कर सकता, दूसरे से बात नहीं कर सकता, घर नहीं जा सकता इत्यादि। जानकारी अनिवार्य है...

यदि ध्यान जानकारी की, ज्ञान की निरंतरता है, उस सब की निरंतरता है जिसे मनुष्य ने संचित किया है, तब तो स्वतंत्रता है ही नहीं। स्वतंत्रता तभी होती है जब यह समझ हो कि ज्ञान का कार्य क्या है, तब फलित होती है ज्ञात से मुक्ति।
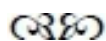
ध्यान में व्यक्ति को व्यवस्था की नींव रखनी होती है, जिसका अर्थ है सम्यक आचरण—प्रतिष्ठा व सामाजिक नैतिकता नहीं—जो कि नैतिकता है ही नहीं, अपितु वह व्यवस्था जो अव्यवस्था को समझने से आती है, जो कि एक बिलकुल अलग बात है। जब तक द्वंद्व है तब तक अव्यवस्था रहती ही है, वह द्वंद्व चाहे बाह्य हो या आंतरिक।

ॐ

भारत में और उसके और आगे पूर्व के देशों में विभिन्न संप्रदाय हैं, जिनमें वे ध्यान की विधियां सिखाते हैं—यह वास्तव में कितनी भयावह बात है। इसका अर्थ हुआ मन को यांत्रिक रूप से प्रशिक्षित करना, जिससे कि वह स्वतंत्र नहीं रह पाता और समस्या को समझने में अक्षम रहता है।

तो जब हम ध्यान शब्द का इस्तेमाल करते हैं, तो हमारा मतलब किसी ऐसी चीज़ से नहीं है जिसका अभ्यास किया जाए। हमारे पास कोई विधि नहीं है। ध्यान का अर्थ है जो भी कुछ आप कर रहे हैं, उसके प्रति सजगता, जो आप सोच रहे हैं, जो आप महसूस कर रहे हैं उसके प्रति सजग होना—बिना किसी पसंद-नापसंद के अवलोकन करना, सीखना। ध्यान है अपनी संस्कारबद्धता के प्रति सजग होना कि कैसे हम उस समाज द्वारा संस्कारित हैं जिसमें हम रहते हैं, जिसमें हम पले-बढ़े हैं, कैसे हम धार्मिक प्रचार द्वारा संस्कारित हैं—सजग होना बिना किसी चयन के, बिना विकृति के, बिना इस चाहत के कि काश, यह भिन्न होता! इस सजगता से अवधान का आगमन होता है, पूरी तरह अवधानयुक्त होने की, सावधानता की क्षमता आती है। तब चीज़ों को जैसी वे हैं बिना किसी विकृति के वैसी ही देख पाने की स्वतंत्रता आती है। मन भ्रममुक्त, स्पष्ट, संवेदनशील बन जाता है। ऐसे ध्यान की परिणति मन की ऐसी गुणवत्ता में होती है जिसमें मन पूरी तरह से मौन है—अब इस गुणवत्ता की बातें हम चाहे जितनी कर लें, लेकिन जब तक यह विद्यमान नहीं है, यथार्थ नहीं है, इसकी चर्चा का भला क्या अर्थ?

शब्दों की, वाक्यों की, मंत्रों की, गुरु द्वारा दी गयी शब्दावली की पुनरावृत्ति करना, दीक्षित होना, किसी वाक्य विशेष को, जिसे आपको गुप्त रूप से दोहराना होगा, सीखने के लिए धन देना—संभवतः आप में से कुछ ने यह किया है और आप इसके बारे में बहुत कुछ जानते हैं। इसे मंत्रयोग कहते हैं और इसे भारत से लाया गया है। मुझे नहीं मालूम कि आप एक पैसा भी क्यों देते हैं किसी के दिये गये शब्दों को दोहराने के लिए जो यह कहता है, "यदि आप ऐसा करेंगे तो आपको संबोधि उपलब्ध हो जाएगी, आपका मन एक शांत मन होगा"। जब आप शब्दों के किसी क्रम को लगातार दोहराते हैं, चाहे वह 'आवे मारिया' हो या विविध संस्कृत शब्द हों, तो ज़ाहिर है कि आपका मन बोझिल, मंद हो जाता है व आपको एक खास किस्म की एकता का, शांति का एहसास होता है, और आप सोचते हैं कि इससे आपको स्पष्टता लाने में मदद मिलेगी। आप इस सब का अटपटापन देख सकते हैं, क्योंकि इन मामलों में कोई भी—मेरे समेत—चाहे जो कहे उसे आपको स्वीकार क्यों कर लेना चाहिए? जीवन की आंतरिक गति के बारे में आपको किसी की भी हुकूमत क्यों मान लेनी चाहिए? हम बाहर के संदर्भ में तो सत्ता को नकार देते हैं; अगर आप बौद्धिक रूप से ज़रा भी जागरूक और राजनीतिक रूप से सचेत हैं, तो आप बाह्य सत्ता को नकारते ही हैं। पर ज़ाहिर है कि हम उस व्यक्ति का सत्ता-प्रामाण्य स्वीकार कर लेते हैं जो कहता है, "मैं जानता हूं, मैंने उपलब्ध कर लिया है, मैंने पा लिया है।" जो व्यक्ति कहता है कि वह जानता है, वह जानता नहीं है।

ঞ্জ

जब आप समझ जाते हैं तो सदाचार नेकी के एक फूल की तरह खिल उठता है। तब आप इस बात का अन्वेषण आरंभ कर सकते हैं कि वह क्या है जिसकी मनुष्य को सदियों से तलाश रही है, जिसे वह खोजता रहा है, पा लेने की कोशिश करता रहा है। आप संभवतः इसे नहीं समझ सकते, इससे आपका मिलना नहीं हो सकता, यदि आपने नींव अपने दैनिक जीवन में नहीं रखी है। और तब हम पूछ सकते हैं कि ध्यान क्या है, यह नहीं कि ध्यान कैसे करें या ध्यान करने के लिए कौन से कदम उठाए जाएं अथवा ध्यान करने हेतु किन विधियों या प्रणालियों का अनुसरण किया जाए। सभी प्रणालियां, सभी विधियां मन को यांत्रिक बनाती हैं। यदि मैं किसी विशेष प्रणाली का अनुगमन करता हूं, चाहे उसे आपकी कल्पना के महान से महान गुरु ने कितने ही ख्याल से क्यों न बनाया हो, वह प्रणाली, वह विधि मन को यांत्रिक ही बनायेगी, और एक यांत्रिक मन तो मरे हुए के समान है।
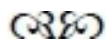
ध्यान की कोई प्रणाली ध्यान नहीं है। किसी प्रणाली में निहित है कोई विधि, जिसका अभ्यास आप इसके पूरा होने पर कुछ उपलब्ध करने के लिए किया करते हैं। किसी भी चीज़ का अभ्यास अगर बार-बार किया जाए, तो वह यांत्रिक हो जाता है, क्या ऐसा नहीं होता? एक यांत्रिक मन जिसको उस प्रारूप का अनुसरण करने के लिए, जिसे वह 'ध्यान' कहता है, तोड़ा-मरोड़ा गया है, सताया गया है, और जिसे इस सब के अंत में एक पुरस्कार प्राप्त करने की आस लगी है, ऐसा मन अवलोकन के लिए, सीखने के लिए स्वतंत्र कैसे हो सकता है?

ᘛᘚ

ध्यान है प्रत्येक विचार और प्रत्येक भाव के प्रति सजग होना, कभी ऐसा न कहना कि यह सही है या गलत है, अपितु इसे देखना-भर, और इसके साथ आगे बढ़ना। इस देखने में ही आप विचार और भाव की समस्त गति को समझना आरंभ करते हैं। और इसी सजगता से मौन का आगमन होता है। विचार द्वारा निर्मित मौन तो गतिहीन है, मृत है, किंतु वह मौन जो तब आता है जब विचार ने अपने आरंभ को, अपनी प्रकृति को समझ लिया है, यह समझ लिया है कि किस तरह कोई भी विचार कभी भी स्वतंत्र नहीं है, बल्कि हमेशा पुराना है—यही मौन वह ध्यान है जिसमें ध्यानकर्ता पूरी तरह अनुपस्थित है, इसलिए कि मन ने स्वयं को अतीत से रिक्त कर लिया है।
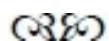
ध्यान कभी भी शरीर का नियंत्रण नहीं है। शरीर-संरचना और मन में कोई वास्तविक विभाजन नहीं है। मस्तिष्क, स्नायुतंत्र और जिसे हम मन कहते हैं, यह सब अविभाज्य रूप से एक है। यह ध्यान का स्वाभाविक कृत्य ही है जो समग्र की एकलयतापूर्ण गतिशीलता लाता है। शरीर को मन से विभाजित मानना और बौद्धिक निर्णयों से शरीर को नियंत्रित करना अंतर्विरोध को जन्म देता है, जिससे विविध प्रकार के संघर्ष, द्वंद्व और अवरोध उत्पन्न होते हैं।
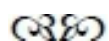
धर्म क्या है? यह अपने पूरे अवधान के साथ, अपनी संपूर्ण ऊर्जा को संयुक्त करके उसका पता लगाने हेतु अन्वेषण है, जो पावन है; यह उसके समक्ष आना है, जो पवित्र है। ऐसा तभी घटित हो सकता है जब विचार के शोर से मुक्ति हो, जब मानसिक, आंतरिक रूप से विचार और समय का अंत हो गया हो—संसार में जानकारी का अंत नहीं, यहां तो आपको जानकारी के द्वारा कार्य करना होता है। वह जो पवित्र है, जो पावन है, जो सत्य है, तभी विद्यमान होता है जब प्रशांति हो, मौन हो, जब स्वयं मस्तिष्क ने विचार को उसके सही स्थान पर रख दिया हो। उस विराट मौन से ही उसका प्रादुर्भाव होता है, जो पावन है।

यदि आप समझ सकें कि ध्यान क्या है, तो यह सर्वाधिक असाधारण स्थितियों में से एक है; पर इसे आप संभवतः तब तक नहीं समझ सकते, जब तक कि आप जिसे सत्य माने बैठे हैं, उसे खोजते रहना, टोहते रहना, चाहते रहना आपके भीतर से विदा नहीं हो जाता—वह सत्य तो आपका ही प्रक्षेपण है। इस तक आप नहीं पहुंच सकते जब तक कि ऐसा न हो गया हो कि आपमें किसी भी तरह के 'अनुभव' की मांग बिलकुल रह ही न गयी हो। और आप उस विभ्रम को, उलझाव को, अपने जीवन की अव्यवस्था को समझ रहे हों, जिसमें आप रहते हैं। उस अव्यवस्था के अवलोकन से व्यवस्था आती है—जिसका कोई बना-बनाया नक्शा नहीं होता। जब आपने ऐसा कर लिया हो—जो कि अपने-आप में ध्यान ही है—तब हम न केवल यह पूछ सकते हैं कि ध्यान क्या है, बल्कि यह भी कि ध्यान क्या नहीं है, क्योंकि जो मिथ्या है, उसके निषेध में ही सत्य होता है।
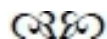
शारीरिक संरचना की अपनी प्रज्ञा होती है जिसे सुख की चाहना, सुख की आदत कुंद कर देती है। ये आदतें उस संरचना की संवेदनशीलता को नष्ट करती हैं और संवेदनशीलता का यह अभाव मन को मंद बनाता है। ऐसा मन एक संकीर्ण और सीमित दायरे में सचेत हो सकता है पर होता वह तब भी असंवेदनशील ही है। ऐसे मन की गहराई मापन की सीमा में होती है तथा यह छवियों और भ्रांतियों में फंसा होता है। इसका सतहीपन ही इसकी एकमात्र चमक है। शरीर का हलकापन और उसकी प्रज्ञाशीलता ध्यान के लिए आवश्यक है।

ꕥ
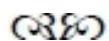
ध्यान की समझ में प्रेम होता है और प्रेम प्रणालियों का, आदतों का या किसी विधि के अनुसरण का परिणाम नहीं है। प्रेम का पोषण विचार द्वारा नहीं किया जा सकता। प्रेम संभवतः तब अस्तित्व में आ पाता है जब पूर्ण मौन होता है, एक ऐसा मौन, ऐसी मनोशांति जिसमें ध्यानकर्ता पूर्णतया अनुपस्थित होता है; और मन तभी मौन हो सकता है जब यह विचार और भाव के रूप में अपनी गतिविधि को समझ लेता है। विचार और भाव की इस गतिविधि को समझने के लिए जो अवलोकन होता है उसमें निंदा की कोई जगह नहीं है। इस प्रकार का अवलोकन ही अनुशासन है, और ऐसा अनुशासन प्रवाहशील है, मुक्त है, यह रूढ़िपालन का अनुशासन नहीं है।

ꙮ

ध्यान क्या है? इससे पहले कि हम इस वस्तुतः काफी पेचीदा और जटिल समस्या को लें, हमें इस बारे में एकदम स्पष्ट होना चाहिए कि वह है क्या जिसकी हमें तलाश है। हम हमेशा कुछ-न-कुछ खोज रहे होते हैं, विशेष रूप से वे जो धार्मिक रुझान के हैं। वैज्ञानिक तक के लिए खोज करना एक बहुत बड़ा मुद्दा है। इससे पहले कि हम इस प्रश्न में पैठें कि ध्यान क्या है और हमें ध्यान करना ही क्यों चाहिए, इसका उपयोग क्या है व यह आपको ले जाता कहां है, तलाश के इस मसले को बहुत स्पष्ट तथा सुनिश्चित तौर पर समझ लेना आवश्यक है।

इस शब्द—खोज या तलाश—किसी लक्ष्यप्राप्ति हेतु दौड़, ढूंढ़ निकालना—में निहित है कि हम कमोबेश पहले से ही जानते हैं कि हम किस प्राप्य के पीछे लगे हैं। जब हम कहते हैं कि हम सत्य की खोज में हैं, या अगर हम धार्मिक रुझान वाले हैं तो कहते हैं कि ईश्वर को ढूंढ़ रहे हैं, या फिर हमें एक आदर्श जीवन की तलाश है अथवा ऐसा ही कुछ और, तो हमारे दिमाग में पहले से ही उसकी कोई छवि, कोई धारणा तो होगी। खोजकर कुछ पाने का अर्थ है हमें पहले से पता है कि उस प्राप्य का रूप, रंग, तत्त्व इत्यादि क्या है। क्या 'तलाश' या 'खोज' शब्द में यह निहित नहीं है कि हमने कुछ खो दिया है और हम उसे पा लेने वाले हैं व जब हम उसे पा लेंगे तो उसे पहचानने में समर्थ होंगे; जिसका तात्पर्य है कि हम उसे पहले से ही जानते हैं, हमें जो करना है वह बस इतना ही है कि हम उसकी तलाश में जाएं और उसे ढूंढ़ निकालें?

ध्यान में पहली बात जो समझ में आती है वह है कि तलाश बेमानी है; इसलिए कि जिसे खोजा-तलाशा जाता है वह आपकी चाह द्वारा पूर्वनिर्धारित होता है। अगर आप नाखुश हैं, अकेले हैं, हताश हैं, तो आप आशा, संग-साथ, कुछ ऐसा जो आपको संभाले रखे, तलाश करेंगे, और आप लाज़िमी तौर पर उसे ही पा भी लेंगे।

क्या ऐसा ध्यान है जो निर्धारित नहीं है, अभ्यास का विषय नहीं है? ऐसा ध्यान है, पर उसके लिए अत्यधिक अवधान की आवश्यकता होती है। यह अवधान एक लौ है; यह अवधान ऐसा कुछ नहीं है जिस तक आप काफी बाद में, कुछ समय गुज़रने पर ही पहुंच पाएंगे; यह अवधान तो अभी है हर चीज़ के प्रति, हर शब्द, हर संकेत, हर विचार के प्रति; इसका अर्थ है पूरा अवधान देना, आंशिक नहीं। यदि आप इस समय आंशिक रूप से सुन रहे हैं तो आप पूरा अवधान, पूरा ध्यान नहीं दे रहे हैं। जब आप पूर्णतः अवधानयुक्त होते हैं, तो कोई स्व नहीं होता, कोई सीमा नहीं होती।
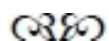
एक धार्मिक जीवन ध्यानपूर्ण जीवन है, जिसमें स्व की गतिविधियां अनुपस्थित हैं।
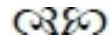
क्या संपूर्ण मन, जिसमें मस्तिष्क भी शामिल है, पूर्णतः निश्चल हो सकता है? लोगों ने, वस्तुतः बहुत गंभीर लोगों ने यह प्रश्न पूछा है, और वे इसका समाधान नहीं कर पाए हैं। उन्होंने तरकीबें आज़मायी हैं। उन्होंने कहा है कि मन को शब्दों की आवृत्ति द्वारा स्थिर किया जा सकता है। क्या आपने कभी 'आवे मारिया' या उन संस्कृत शब्दों, मंत्रों को दोहराने की कोशिश की है जिन्हें कुछ लोग भारत से ले आते हैं और उन शब्दों को दोहराने से मन के स्थिर होने की बात कही जाती है? इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि वह शब्द क्या है, बस उसे आवृत्ति की लय दे दें, 'कोका कोला' या कोई भी शब्द व उसे अक्सर दोहराते रहें और आप देखेंगे कि आपका मन शांत हो जाता है; लेकिन यह एक मंद, सुस्त मन होता है, यह संवेदनशील मन नहीं होता जो सचेत, सजीव, उत्कट हो। और एक मंद मन चाहे यह कहता रहे, "मुझे एक ज़बरदस्त भावातीत अनुभव हुआ है" वह स्वयं को धोखा ही दे रहा होता है।

෴
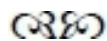
ध्यान के संदर्भ में समग्र महत्त्व की बात है उस मार्ग का अनुसरण न करना जो विचार ने उस लक्ष्य तक पहुंचने के लिए निर्मित किया है, जिसे विचार सत्य, संबोधि अथवा यथार्थ मानता है। सत्य तक ले जाने वाला कोई मार्ग नहीं होता है। किसी भी मार्ग का अनुसरण उस तक ले जाता है जिसे विचार ने पहले से ही प्रतिपादित किया हुआ है और वह चाहे जितना सुखप्रद या संतोषदायक हो, सत्य तो नहीं है। यह सोचना एक भ्रांति है कि ध्यान की कोई प्रणाली, दैनिक जीवन में कुछ तय क्षणों के लिए उस प्रणाली का निरंतर अभ्यास अथवा दिन के दौरान उसकी आवृत्ति—यह सब स्पष्टता या समझ को जन्म देगा। ध्यान इस सबसे परे है और जैसे विचार द्वारा प्रेम का संवर्धन नहीं किया जा सकता, वैसे ही इसके द्वारा ध्यान का संवर्धन संभव नहीं है। जब तक ध्यान करने हेतु विचारक मौजूद है, ध्यान केवल उस आत्म-अलगाव का ही हिस्सा है जो व्यक्ति के दैनिक जीवन की एक आम गतिविधि है।
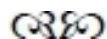
ध्यान में कोई ध्यानकर्ता नहीं होता। यदि वह है, तो यह ध्यान नहीं है।

ઌ

ध्यान मन की वह स्थिति है जो सब कुछ पूर्ण अवधान के साथ देखती है—समग्रता में, अंशों में नहीं। और आपको कोई यह नहीं सिखा सकता कि अवधानयुक्त कैसे हों। यदि कोई प्रणाली आपको यह सिखाती है कि अवधानयुक्त कैसे होते हैं, तब आपका ध्यान-अवधान बस उस प्रणाली पर होता है, और वह तो अवधान नहीं है।

ꕥ

जब आप किसी वृक्ष को, या अपने पड़ोसी के चेहरे को, या अपनी पत्नी या पति के चेहरे को देखते हैं और यदि आप उसे मन के उस गुण-धर्म के साथ देखते हैं जो पूरी तरह खामोश है, तब आप कुछ ऐसा देख पाते हैं जो बिलकुल नया है। मन का ऐसा मौन कोई उपलब्धि नहीं है जिसे किसी अभ्यास के माध्यम से अर्जित किया जा सके। यदि आप किसी विधि का अभ्यास करते हैं तो आप अभी भी एक बहुत छोटे घेरे में रह रहे होते हैं जिसे 'मैं' के रूप में विचार ने ही निर्मित किया है, वह 'मैं' जो अभ्यास कर रहा है, आगे बढ़ रहा है। वह घेरा द्वंद्वों से भरा है, इसकी अपनी उपलब्धियों और असफलताओं से भरा है और ऐसा मन कभी मौन नहीं हो सकता, यह चाहे जो कर ले।

ध्यान है मन को ज्ञात से रिक्त करना। वह ज्ञात अतीत है। यह रिक्त करना संचय कर लेने के बाद नहीं होता, अपितु इसका अभिप्राय है संचित ही न करना। जो हो चुका है, उसे केवल वर्तमान में रिक्त किया जा सकता है, विचार द्वारा नहीं बल्कि कृत्य द्वारा। अतीत है निष्कर्ष से निष्कर्ष तक की गतिविधि तथा 'जो है' का उस निष्कर्ष द्वारा मूल्यांकन। समस्त मूल्यांकन निष्कर्ष है, चाहे यह अतीत का हो या वर्तमान का, और यह निष्कर्ष ही है जो ज्ञात से मन को निरंतर रिक्त नहीं होने देता; इसलिए कि ज्ञात हमेशा ही निष्कर्ष है, संकल्प है।

ज्ञात संकल्प का कृत्य है, और कार्यरत संकल्प ज्ञात की निरंतरता है, अतएव संकल्प के कृत्य द्वारा मन को रिक्त कर पाना भला कैसे संभव हो सकता है!

हमारा सारा जीवन विचार पर आधारित है जो परिमेय है, जिसे मापा जा सकता है। यह ईश्वर को मापता है, यह अन्य के साथ अपने संबंध को छवि के माध्यम से मापता है। जैसा कि यह सोचता है कि इसे होना चाहिए, उसी के अनुसार यह स्वयं को बेहतर बनाने की कोशिश करता है। अतः अनावश्यक रूप से हम मापन की एक दुनिया में रहते हैं, और उस दुनिया के साथ ही हम एक ऐसे विश्व में प्रवेश करना चाहते हैं जहां कोई भी मापन नहीं है। ध्यान है 'जो है' को देखना और उसके पार जाना—मापन को देखना और उस मापन के पार जाना।

ꕥ
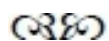
ध्यान है चेतना की अंतर्वस्तु को रिक्त करना। यही ध्यान का अर्थ और गहराई है, समस्त अंतर्वस्तु का खाली किया जाना—विचार का अपने समापन तक आना।

ध्यान ऐसा अवधान, ऐसा होश है जिसमें कोई अंकन नहीं होता। आम तौर से मस्तिष्क लगभग सब कुछ अंकित करता है, आवाज़ों को, इस्तेमाल किये जा रहे शब्दों को यह किसी टेप की तरह अंकित करता रहता है। अब, क्या मस्तिष्क के लिए संभव है कि जो अंकित करना पूरी तरह ज़रूरी है, उसे छोड़ कर और कुछ भी अंकित न करे। मुझे कोई अपमान क्यों अंकित करना चाहिए? यह अनावश्यक है। मुझे किसी भी तरह का आहत होना क्यों अंकित करना चाहिए? इसलिए वही अंकित करें जो कि दैनिक जीवन में कार्य करने के लिए आवश्यक है—एक तकनीशियन, एक लेखक इत्यादि के तौर पर—किंतु मनोवैज्ञानिक तौर पर कुछ भी अंकित न करें। ध्यान में मनोवैज्ञानिक रूप से कुछ भी अंकित नहीं होता, बस जीवन के व्यावहारिक तथ्यों —कार्यालय जाना, फैक्टरी में काम करना इत्यादि—के अतिरिक्त कोई अंकन नहीं होता। अन्य कुछ भी अंकित नहीं होता। इससे पूर्ण मौन का आगमन होता है क्योंकि विचार का अंत हो चुका है—सिवाय इसके कि यह केवल तभी काम करे जहां यह पूरी तरह से आवश्यक हो। समय का अंत हो चुका है, और एक पूरी तरह से भिन्न प्रकार की गतिशीलता है, मौन की गतिशीलता।

ॐ

क्या आप सजगता का अभ्यास कर सकते हैं? यदि आप सजगता का 'अभ्यास' कर रहे हैं, तो आप अनवधान में हैं, असावधान हैं। तो इस असावधानता के प्रति सजग हो जाएं, आपको किसी अभ्यास की दरकार नहीं पड़ेगी। आपको बर्मा, चीन, भारत जैसी जगहों पर नहीं जाना पड़ेगा, जो रोमानी तो हैं, पर तथ्यात्मक नहीं। मुझे याद आता है कि भारत में एक बार मैं कुछ लोगों के साथ कार में सफर कर रहा था। मैं आगे की सीट पर ड्राइवर के साथ बैठा था। पीछे तीन व्यक्ति बैठे थे जो सजगता के बारे में बात कर रहे थे, मुझसे चर्चा करना चाह रहे थे कि सजगता क्या है। कार बहुत तेज़ी से जा रही थी। सड़क पर कोई बकरी थी, ड्राइवर ने बहुत ध्यान नहीं दिया और वह बेचारी कार के नीचे आ गई। पीछे बैठे सज्जन अब भी सजगता पर चर्चा कर रहे थे, पर उनमें से किसी को भी पता ही नहीं चला कि हो क्या गया था। आप हंस रहे हैं, पर हम सब ऐसा ही तो किया करते हैं।
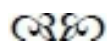
ध्यान के पूर्ण अवधान में, पूरे होश में, जानना नहीं होता, न पहचानने की क्रिया होती है, और न ही जो हो चुका है उसकी स्मृति होती है। समय और विचार का पूरी तरह अवसान हो चुका होता है क्योंकि उनसे ही तो वह केंद्र बनता है जो स्वयं अपनी दृष्टि को सीमित कर लेता है।

प्रकाश के क्षण में विचार विसर्जित हो जाता है, और उसे अनुभव और स्मरण करने का कोई भी सचेतन प्रयास तो वह शब्द है जो अतीत है, जो था। और शब्द कभी भी यथार्थ नहीं होता। उस क्षण में—जो समय के अंतर्गत नहीं है—आत्यंतिक, परम ही तात्कालिक होता है, किंतु उस परम का कोई प्रतीक नहीं है, वह परम किसी व्यक्ति, किसी ईश्वर की परिधि में नहीं है।
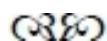
सारा एशिया ध्यान की चर्चा किया करता है; यह उनकी आदतों में से एक है, जैसे कि ईश्वर में या किसी अन्य चीज़ में विश्वास करना एक आदत है। वे एक शांत कमरे में दस मिनट के लिए बैठते हैं और 'ध्यान' करते हैं, एकाग्र हो जाते हैं, अपने मन को किसी छवि पर केंद्रित कर लेते हैं, जो छवि या तो उनकी अपनी बनायी होती है या किसी और की गढ़ी होती है जिसने उस छवि, उस प्रतिमा को प्रचार के माध्यम से पेश किया होता है। उन दस मिनटों में वे मन को नियंत्रित करने का प्रयास करते हैं, मन पीछे या आगे जाना चाहता है और वे उसके साथ संघर्ष करते रहते हैं। वे इस खेल को हमेशा खेला करते हैं और इसी को वे 'ध्यान' कहते हैं।

यदि किसी को ध्यान के बारे में कुछ भी मालूम नहीं है, तो उसे पता लगाना होगा कि यह क्या है —यह वस्तुतः क्या है, न कि किसी के अनुसार, और तब हो सकता है कि यह व्यक्ति को न-कुछ में ले जाये, या हो सकता है कि यह उसे सब-कुछ में ले जाये। बिना किसी अपेक्षा के हमें यह अन्वेषण करना होगा, यह प्रश्न पूछना होगा।
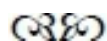
हम में से अधिकतर के लिए, सुंदरता किसी वस्तु में होती है, किसी इमारत में, बादल में, पेड़ की आकृति में, किसी खूबसूरत चेहरे में। क्या सुंदरता 'वहां बाहर' है, या यह उस मन की गुणवत्ता है जिसमें कोई स्व-केंद्रित गतिविधि नहीं हो रही? क्योंकि आनंद की तरह, सौंदर्य का बोध, उसकी समझ भी ध्यान में अनिवार्य है।

☙

ध्यान है मन को समस्त विचारों से रिक्त करना, क्योंकि विचार तथा भाव ऊर्जा का क्षरण करते हैं। वे दोहराव भर होते हैं व यांत्रिक क्रियाकलाप को निर्मित करते हैं जो कि अस्तित्व का एक ज़रूरी हिस्सा है पर है वह एक हिस्सा ही, और विचार व भाव जीवन की विराटता में संभवतः प्रवेश नहीं कर सकते। एक नितांत भिन्न दृष्टि, एक बिलकुल अलग तरह की पहुंच आवश्यक है, आदत, साहचर्य और ज्ञात का मार्ग नहीं, इस सबसे तो मुक्त होना होगा। ध्यान मन को ज्ञात से रिक्त करना है। ऐसा विचार द्वारा या विचार के प्रच्छन्न संकेतों द्वारा नहीं किया जा सकता, न प्रार्थना के रूप में इच्छा के माध्यम से ऐसा हो सकता है और न ही यह शब्दों, छवियों, आशाओं व अहम्मन्यताओं के रूप में स्वयं को भुला देने वाले सम्मोहन के ज़रिये संभव है। इन सब का तो सहजता से, बिना किसी प्रयास, बिना किसी चयन के, सजगता की लौ में अंत कर देना होता है।

ॐ
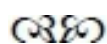
केवल निश्चल मन ही यह समझ सकता है कि मौन मन में एक ऐसी गतिशीलता होती है जो बिलकुल भिन्न होती है। इसे कभी शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता क्योंकि यह अवर्णनीय है। जिसका वर्णन हो सकता है वह उतना ही है जो आपको इस बिंदु, इस जगह तक ले आये जहां आपने नींव रख दी है और एक निश्चल मन की आवश्यकता, उसका सच और उसका सौंदर्य देख लिया है।
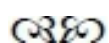
ध्यान वर्तमान की निर्दोषता है अतएव यह सदैव एकाकी होता है। जो मन विचार से अनछुआ, पूर्णतः एकाकी होता है, संगृहीत करना बंद कर देता है। इसलिए मन को रिक्त करना हमेशा वर्तमान में होता है। जो मन एकाकी है, उसके लिए भविष्य—जो कि अतीत का ही पहलू है—तिरोहित हो जाता है। ध्यान तो एक गतिशीलता है, न कि कोई निष्पत्ति या उपलब्ध करने हेतु कोई लक्ष्य।

ꕥ
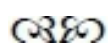
क्या आपने दिन के दौरान कभी बिना किसी तर्मीम के, बिना कुछ सुधारे सावधान-सचेत होने की, बिना किसी चयन के सजग होने की, अपने विचार को, अपने प्रयोजनों को, आप क्या कह रहे हैं, कैसे आप बैठे हैं, शब्दों को, संकेतों को प्रयोग करने के अपने तरीकों को देखने की—बस देखने-मात्र की कोशिश की है?
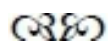
क्या मन चुप हो सकता है? मुझे नहीं मालूम कि जब आप इस समस्या को देखते हैं, जब आप इस उत्कृष्ट, सूक्ष्म मन के होने की, जो पूरी तरह मौन है, आवश्यकता को, इसके सत्य को देखते हैं, तो आप क्या करने वाले हैं? ऐसा कैसे संभव हो? यही ध्यान की समस्या है क्योंकि मात्र ऐसा मन ही धार्मिक मन है। केवल ऐसा मन ही पूरे जीवन को एक इकाई के रूप में, एक संयुक्त घटना के रूप में देख पाता है, खंडित रूप में नहीं। अतएव केवल ऐसा मन ही संपूर्णता से कर्म करता है, विखंडित रूप से नहीं, क्योंकि ऐसे कर्म का उद्गम पूर्ण निश्चलता से होता है।

क्या यह आमूल आंतरिक क्रांति तत्क्षण हो सकती है? यह तत्क्षण हो सकती है जब आप इस सब के खतरे को देख लें। यह ऐसा ही है जैसे किसी उत्तुंग चट्टान के खतरे को, किसी जंगली जानवर के, किसी सांप के खतरे को देख लेना; तब तत्काल कर्म होता है। लेकिन हम इस सारे विखंडन के खतरे को देखते ही नहीं है जो तब खड़ा होता है जब 'स्व', 'मैं' महत्त्वपूर्ण बन जाता है—और 'मैं' तथा 'मैं नहीं' का विखंडन सामने आता है। जिस क्षण आपके भीतर विखंडन होता है, द्वंद्व होता ही है; और द्वंद्व ही विकृति का, भ्रष्टता का मूल है। अतः व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह ध्यान के सौंदर्य का स्वतः ही पता लगाये, क्योंकि तब मन स्वतंत्र तथा संस्कारमुक्त होने के कारण उसका बोध कर पाता है जो सत्य है।
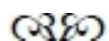
ध्यान वस्तुतः मन को पूरी तरह से रिक्त कर लेना है। तब केवल शरीर के कार्य होते रहते हैं; केवल शरीर की, अवयव-संस्थान की गतिविधि जारी रहती है, उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं; तब विचार 'यह मैं' और 'यह मैं नहीं' से तादात्म्य किये बिना, पहचान जोड़े बिना कार्य करता है। विचार यांत्रिक होता है, जैसे कि शरीर-संरचना यांत्रिक है। द्वंद्व इस बात से उत्पन्न होता है कि विचार अपना तादात्म्य अपने अंशों में से एक के साथ कर लेता है, अपनी पहचान उससे जोड़ लेता है, जो 'मैं', स्व और उस स्व के विविध विभाजन बन जाते हैं। स्व की किसी भी समय कोई आवश्यकता नहीं है। शरीर के अलावा और कुछ नहीं है, और एक मुक्त मन तभी संभव है जब विचार 'मैं' को जन्म नहीं दे रहा होता।
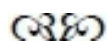
हमें अतीत के इस प्रश्न को वास्तव में समझ लेना होगा—बीते कल के रूप में अतीत आज के माध्यम से, जो भी कल हुआ है उससे आने वाले कल को आकार देता रहता है। क्या मन, जो समय का, क्रमविकास का परिणाम है, अतीत से मुक्त हो सकता है? जिसका अर्थ है मृत होना। केवल वही मन जो इस प्रकार मृत होना जानता है, ध्यान का स्पर्श कर पाता है। इस सब को समझे बिना, ध्यान करने की कोशिश करना बचकानी कल्पना मात्र है।

ᘛ☙ᘚ
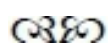
ध्यान गंभीरतम चीज़ों में से एक है। आप इसे पूरे दिन कर सकते हैं—कार्यालय में, घर-परिवार में या जब आप किसी से कहते हैं, "मुझे तुमसे प्रेम है", या जब आप अपने बच्चों के बारे में सोचते-विचारते हैं। और तब आप पढ़ाने-लिखाने के बाद उनका राष्ट्रीयकरण कर देते हैं, एक सैनिक बना देते हैं कि जाओ, मारो-काटो, झंडे की पूजा करो। आप उन्हें पढ़ाते-लिखाते हैं ताकि वे आधुनिक जगत के किसी-न-किसी फंदे और मोहजाल में आराम से समा जायें। इस सबका निरीक्षण करना, इसमें अपनी भूमिका को देखना और एहसास करना—ये सब ध्यान के ही अंग हैं। और जब इस तरह आप ध्यान करते हैं, तो इसमें आपको एक अपूर्व सौंदर्य का दर्शन होता है। तब हर क्षण आप सम्यक ढंग से कार्य करेंगे एवं जियेंगे, और अगर किसी खास क्षण आप ऐसा करने से चूक भी जायें तो कुछ फर्क नहीं पड़ता, आप पुनः ध्यान के छोर को पकड़ लेंगे—आप पश्चात्ताप में समय नहीं गंवायेंगे। ध्यान जीवन का ही अंग है—जीवन से भिन्न नहीं।
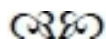
दुनिया के सफर के दौरान जब हम गरीबी की भयावह दशा को तथा मनुष्य के मनुष्य से संबंध की कुरूपता को देखते हैं, तो यह बात सुस्पष्ट हो जाती है कि एक पूर्ण क्रांति का घटित होना आवश्यक है। एक भिन्न प्रकार की संस्कृति का अस्तित्व में आना ज़रूरी है। पुरानी संस्कृति करीब-करीब मर चुकी है, तो भी हम इससे चिपटे हुए हैं। जो युवा हैं, वे इसके खिलाफ बगावत करते तो हैं, परंतु दुर्भाग्य से उन्हें मनुष्य के सारभूत स्वभाव अर्थात मन को रूपांतरित करने का कोई ढंग या कोई साधन नहीं मिल पाया है। जब तक एक गहन मानसिक क्रांति नहीं होती, केवल परिधि में सुधार से कोई असर नहीं पड़ने वाला है। यह मानसिक क्रांति—जो मेरी दृष्टि में एकमात्र क्रांति है—ध्यान के द्वारा ही संभव है।

पूर्णतया कुछ न होने का अर्थ है मापन के पार हो जाना।

ଔ
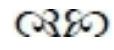
सौंदर्य का अर्थ है संवेदनशीलता—शरीर जो कि संवेदनशील है, जिसका तात्पर्य है सही आहार, जीने का सही तरीका, और आप अगर इतनी दूर तक आ गए हैं तो आपके जीवन में ऐसा होता ही है। मुझे उम्मीद है कि आप ऐसा करेंगे या कर ही रहे होंगे; तब मन लाज़िमी तौर पर, सहज ही, अनजाने ही चुप हो जाता है। आप मन को खामोश कर नहीं सकते क्योंकि आप ही तो उपद्रव और शरारत की जड़ हैं, आप स्वयं ही बेचैन, चिंतित, दिग्भ्रमित हैं—आप कैसे मन को शांत कर सकते हैं। परंतु जब आप समझ लेते हैं कि खामोशी क्या है, जब आप समझ लेते हैं कि विभ्रम क्या है, दुख क्या है और क्या दुख का कभी अंत हो सकता है, और जब आप समझ लेते हैं कि सुख, मनोविलास क्या है, तो इस सारी समझ के चलते एक असाधारण रूप से मौन मन का आगमन होता है, आपको इसे खोजना नहीं पड़ता। शुरुआत आपको शुरू से ही करनी होती है एवम् पहला कदम ही आखिरी कदम होता है, और यही ध्यान है।

अनुभव की अर्थवत्ता क्या है? क्या इसकी कोई सार्थकता है? क्या अनुभव उस मन को जगा सकता है जो सोया हुआ है, जो कुछ खास निष्कर्षों तक पहुंच चुका है तथा विश्वासों से संस्कारबद्ध, उनकी गिरफ्त में है? क्या अनुभव उसे जगा सकता है, इस सारे ताने-बाने को ध्वस्त कर सकता है? और क्या ऐसा मन—इतना संस्कारग्रस्त, अपनी ही समस्याओं, हताशाओं और दुखों से इतना बोझिल—किसी चुनौती का प्रत्युत्तर दे सकता है? क्या यह ऐसा कर पाता है और यदि ऐसा मन प्रत्युत्तर देता भी है, तो क्या वह प्रत्युत्तर नाकाफी नहीं होगा और इसलिए अधिकाधिक द्वंद्व की ओर नहीं ले जाएगा?

प्रेम ध्यान है। प्रेम कोई स्मृति, विचार द्वारा सुख के रूप में कायम कोई छवि नहीं है, न ही यह ऐंद्रिकता द्वारा निर्मित-पोषित कोई रोमानी छवि है; यह तो कुछ ऐसा है जो समस्त इंद्रियों के पार है, जीवन के सारे आर्थिक तथा सामाजिक दबावों से परे है। इस प्रेम का तत्क्षण बोध, इसी पल एहसास ही ध्यान है, इस प्रेम की जड़ें बीते कल में नहीं होतीं; इसलिए कि प्रेम सत्य है, और ध्यान इस सत्य के सौंदर्य का अन्वेषण है।
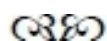
जब मात्र शरीर-संस्थान, मनोदैहिक संरचना हो, बिना किसी स्व के, तो बोध कभी विकृत नहीं हो सकता, चाहे वह बोध दृष्टिजन्य हो या दृष्टि से परे का। केवल 'जो है' को देखना होता है और वही प्रत्यक्ष बोध 'जो है' के पार चला जाता है। मन को रिक्त करना विचार की गतिविधि अथवा बौद्धिक प्रक्रिया नहीं है। बिना किसी तरह की विकृति के 'जो है' उसे लगातार देखना ही सहज रूप से मन को समस्त विचार से रिक्त कर देता है, हालांकि वही मन जब ज़रूरी हो तब विचार का इस्तेमाल कर सकता है। विचार यांत्रिक है तथा ध्यान यांत्रिक नहीं है।
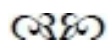
जब मन और मस्तिष्क तथा शरीर में संपूर्ण सुसंगति हो, समस्वरता हो, तो वे मौन होते ही हैं—ऐसा मौन जिसे कोई प्रशामक औषधि ले लेने से या शब्दों की आवृत्ति से निर्मित न किया गया हो, वह चाहे संस्कृत का कोई शब्द हो या 'आवेमारिया' हो। दोहराने से तो आपका मन मंद, सुस्त बन सकता है, और जो मन तंद्रा में है, वह सत्य को भला कैसे खोज पाएगा। सत्य तो कुछ ऐसा है जो सारा समय नया होता है—शब्द 'नया' भी उपयुक्त नहीं है, यह तो वस्तुतः कालातीत, समय के पार होता है।

मौन की विद्यमानता आवश्यक है। मौन न तो शोर का विपरीत है, न ही यह मनोगत बड़-बड़ की समाप्ति है; यह नियंत्रण का, ऐसा कह देने का परिणाम नहीं है कि "मैं मौन रहूंगा", वह तो फिर एक अंतर्विरोध ही हुआ। जब आप कहते हैं कि "मैं ऐसा करूंगा", तो एक ऐसी हस्ती का होना ज़रूरी हो जाता है जो मौन होना तय करे तथा उसका अभ्यास करने लगे जिसे वह मौन कहता है। ऐसा करना तो विभाजन, अंतर्विरोध व विकृति ही लाता है।
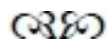
ध्यान रोज़मर्रा के विचार तथा भाव से परे की अनुभूति मात्र नहीं है, न ही यह दृश्यबिंबों एवम् विविध आनंदों की ललक, उनकी दौड़ है। एक अपरिपक्व और मलिन क्षुद्र मन विस्तीर्ण होती चेतना के दृश्यबिंबों तथा इसकी अपनी संस्कारबद्धता के अनुरूप पहचानी जा सकने वाली अनुभूतियों से गुज़र सकता है, गुज़रता भी है। यह अपरिपक्वता स्वयं को इस संसार में सफल बनाने और प्रसिद्धि व कुख्याति उपलब्ध करने में खूब सक्षम हो सकती है। जिन गुरुओं का इस अपरिपक्वता द्वारा अनुसरण किया जाता है, वे भी उसी की मानिंद लक्षण और अवस्था वाले होते हैं। इन सब का ध्यान से कोई सरोकार नहीं है। ध्यान साधक के लिए नहीं है, क्योंकि साधक को वही मिलता है जो वह चाहता है, और जो विश्रांति वह इससे पाता है, वह उसके अपने ही भय और आतंक की नैतिकता है।
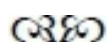
विश्वास और मतांधता में जकड़ा व्यक्ति ध्यान के आयाम में कभी प्रवेश नहीं कर पाता, वह चाहे जो करता रहे। ध्यान के लिए स्वतंत्रता अनिवार्य है। ऐसा नहीं है कि पहले ध्यान, और उसके बाद स्वतंत्रता; बल्कि स्वतंत्रता—सामाजिक नैतिकता और मूल्यों का पूर्ण निषेध—ध्यान की प्राथमिक गतिशीलता है। यह कोई सार्वजनिक मामला नहीं है कि बहुत सारे लोग शामिल हो कर प्रार्थनाएं आयोजित करें। ध्यान तो एकाकी होता है और सामाजिक आचार-पद्धति की सीमाओं से सदैव परे होता है। सत्य विचार द्वारा निर्मित वस्तुओं में नहीं होता। जिसे विचार गढ़ लेता है और सत्य कहकर पुकारने लगता है, सत्य उसमें भी नहीं होता। विचार की इस समस्त संरचना का पूर्ण निषेध ही ध्यान की विधायकता है।

ध्यान सदैव नया होता है। इसमें अतीत का स्पर्श नहीं होता क्योंकि इसकी कोई निरंतरता नहीं होती। 'नया' शब्द उस अभिनवता, उस ताज़गी के गुण-धर्म को संप्रेषित नहीं करता जो अपूर्व है, जो पहले कभी नहीं हुआ। यह मोमबत्ती की उस लौ की तरह है, जिसे बुझाया गया तथा पुनः जला लिया गया। नयी लौ पुरानी लौ नहीं है, हालांकि मोमबत्ती वही है। ध्यान में सातत्य तभी पाया जाता है जब विचार इसे रंग व आकार देता है और कोई प्रयोजन प्रदान कर देता है। विचार द्वारा ध्यान को दिया गया प्रयोजन और अर्थ समयावधि का बंधन बन जाता है। परंतु जिस ध्यान को विचार ने स्पर्श नहीं किया है, उसकी अपनी गतिशीलता होती है जो समय की गति नहीं है। समय में निहित है पुराने और नये का प्रवाह, जो बीते कल की जड़ों से आकर आने वाले कल को गति दे रहा है। परंतु ध्यान में एक पूर्णतः भिन्न प्रस्फुटन है, खिल उठना है। यह बीते कल के अनुभव का परिणाम नहीं है, और इसीलिए इसकी जड़ें समय में कहीं नहीं हैं। इसकी निरंतरता समय की निरंतरता नहीं है। ध्यान के संदर्भ में निरंतरता शब्द का प्रयोग भ्रम में डालने वाला है, क्योंकि जो कल हुआ था, आज वही घटित नहीं हो रहा है।

आज का ध्यान नूतन जागृति है, अच्छाई के सौंदर्य का नूतन प्रस्फुटन है।

ꕥ
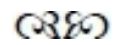
ध्यान है शब्द का अंत। मौन किसी शब्द द्वारा प्रवृत्त नहीं होता, शब्द तो विचार है। मौन से जिस कर्म का उद्भव होता है, वह शब्द से जन्मे कर्म से पूरी तरह भिन्न है। ध्यान है मन का सभी प्रतीकों, छवियों और स्मृतियों से मुक्त हो जाना।

रिक्त मन मांग की वेदी पर नहीं खरीदा जा सकता; यह तब अस्तित्व में आता है जब विचार अपनी खुद की गतिविधियों के प्रति सजग हो—हम विचारक द्वारा विचार के प्रति सजग होने की बात नहीं कर रहे।

ঔ
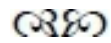
अनुवाद-संदर्भ

अनुवाद में पूरी सावधानी बरतने के बाद भी इसमें कुछ त्रुटियां रह सकती हैं; इसे बेहतर बनाने की गुंजाइश तो हमेशा बनी रहती है। इस संबंध में किसी भी आलोचना या सुझाव का हम स्वागत करेंगे और आगामी संस्करणों में अपेक्षित परिवर्तन किये जा सकेंगे। आपकी बहुमूल्य टिप्पणियों की हमें प्रतीक्षा रहेगी।

अनुवादक

पत्र-व्यवहार का पता :
अनुवाद एवम् प्रकाशन प्रकोष्ठ
कृष्णमूर्ति स्टडी सेंटर, के.एफ.आई.
राजघाट फोर्ट, वाराणसी-221 001
tpcrajghat@gmail.com

Recommended Readings

* The First and Last Freedom
  (प्रथम और अंतिम मुक्ति)
* Freedom from the Known
  (ज्ञात से मुक्ति)
* Krishnamurti on Education
  (शिक्षा संवाद)
* This matter of Culture
  (संस्कृति का प्रश्न)
* Beyond Violence
  (हिंसा से परे)
* You are the World
  Total Freedom : The Essential Krishnamurti
* A Timeless Spring
  On Relationship
* Life Ahead
  Questioning Krishnamurti
* A Wholly Different Way of Living

जे. कृष्णमूर्ति की अन्य पठनीय पुस्तकें

आपको अपने जीवन में क्या करना है?

जीवन से जुड़े जीवंत प्रश्नों का गहन अन्वेषण जे. कृष्णमूर्ति का बीसवीं सदी के मनोवैज्ञानिक व शैक्षिक विचार में मौलिक तथा प्रामाणिक योगदान है। यह पुस्तक उनकी विभिन्न पुस्तकों से संकलित अपने प्रकार का पहला संग्रह है, जिसमें विशेषकर युवा वर्ग को शिक्षा तथा जीवन के विषय में कृष्णमूर्ति की विशद दृष्टि का व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध परिचय प्राप्त होता है।

ईश्वर क्या है?

जे. कृष्णमूर्ति की चर्चित और लोकप्रिय पुस्तकों में एक पुस्तक है। यह पुस्तक उस पावन परमात्मा के लिए हमारी खोज को केन्द्र में रखती है।

कठिनाइयों, विपत्तियों, दुःख, कष्ट और असमंजस में घिरा व्यक्ति जब किसी परमसत्ता से मार्गदर्शन और सहायता की आशा करता हुआ आस्था की ओर लौटता है तो उस 'रहस्यमय परमसत्ता' की वास्तविकता और खोज भी करता है। यही से प्रश्न उठते हैं 'मैं क्या हूँ'—'ईश्वर क्या है?'

जे. कृष्णमूर्ति व्यापक विवेचन करते हुए स्पष्ट करते हैं कि जब हम अपनी वैचारिकता के माध्यम से खोजना बंद कर दें तभी हम यथार्थ, सत्य अथवा आनंद की अनुभूति कर पाएंगे।

शिक्षा क्या है?

क्या आप स्वयं से यह नहीं पूछते कि आप क्यों पढ़-लिख रहे हैं? क्या आप जानते हैं कि आपको शिक्षा क्यों दी जा रही है और इस तरह की शिक्षा का क्या अर्थ है? इस पुस्तक में जीवन से संबंधित युवा मन के ऐसे अनेक पूछे-अनपूछे प्रश्न हैं और जे. कृष्णमूर्ति की दूरदर्शी दृष्टि इन प्रश्नों को मानो भीतर से आलोकित कर देती है, पूरा समाधान कर देती है। ये प्रश्न शिक्षा के बारे में हैं, किंतु सब एक-दूसरे से जुड़े हैं।

दर्शन : संस्कृति : धर्म

भारतीय दर्शन (दो खण्ड) / डॉ. एस. राधाकृष्णन्

विश्वविख्यात दार्शनिक तथा भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. एस. राधाकृष्णन की भारतीय दर्शन के सभी पक्षों पर अधिकृत जानकारी देने वाली यह बृहद कृति बीसवीं शताब्दी में प्रथम प्रकाशन के समय से ही अपने विषय की सबसे महत्त्वपूर्ण तथा प्रामाणिक पुस्तक मानी जाती है। यह वैदिक युग से आरम्भ करके उपनिषद्, पुराण, गीता, षड्दर्शन, बौद्ध तथा जैन धर्म-दर्शनों का सांगोपांग विवेचन वर्तमान युग की भाषा में प्रस्तुत करती है।

उपनिषदों का संदेश / डॉ. एस. राधाकृष्णन्

भारतीय दर्शन में उपनिषदों के चिन्तन की गहरी छाप है। उपनिषदें मानव जीवन के सभी आधारभूत विषयों को अपने विचार का विषय बनाती हैं। विश्वविख्यात दार्शनिक डॉ. राधाकृष्णन ने अपनी पुस्तकों में भारतीय दर्शन के विविध पक्षों का मानक विवेचन प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक में उन्होंने सभी प्रमुख अठारह उपनिषदों (ईश, केन, मठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, श्वेताश्वतर, कौषीतकी, छान्दोग्य, बृहदारण्यक आदि) के विचारों को बड़े सरल और स्पष्ट ढंग से प्रस्तुत किया है। पढ़ने और मनन करने योग्य अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ।

भारतीय संस्कृति : कुछ विचार / डॉ. एस. राधाकृष्णन्

महान विचारक और दार्शनिक डॉ. एस. राधाकृष्णन भारतीय संस्कृति के मूर्धन्य व्याख्याता और समर्थक थे। भारतीय संस्कृति का विश्व की अनेक संस्कृतियों से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए उन्होंने प्रतिपादित किया है कि भारतीय संस्कृति धर्म को जीवन से अलग करने की बात नहीं मानती, अपितु वह मानती है कि धर्म ही जीवन की ओर ले जाने वाला मार्ग है और भारतीय संस्कृति के आध्यात्मिक अन्वेषण से मानव मात्र का जीवन उन्नत हो सकता है।

जे. कृष्णमूर्ति की अन्य पठनीय पुस्तकें

ध्यान

महान दार्शनिक जे. कृष्णमूर्ति की वार्ताओं तथा लेखन से संकलित संक्षिप्त उद्धरणों का यह क्लासिक संग्रह 'ध्यान' के संदर्भ में उनकी शिक्षा का सार प्रस्तुत करता है—अवधान की, होश की वह अवस्था जो विचार से परे है, जो समस्त द्वंद्व, भय व दुःख से पूर्णतः मुक्ति लाती है जिनसे मनुष्य-चेतना की अंतर्वस्तु निर्मित है। इस परिवर्द्धित संस्करण में मूल संकलन की अपेक्षा कृष्णमूर्ति के और अधिक वचन संगृहीत हैं, जिनमें कुछ अब तक अप्रकाशित सामग्री भी सम्मिलित है।

ईश्वर क्या है?

जे. कृष्णमूर्ति की चर्चित और लोकप्रिय पुस्तकों में एक पुस्तक है। यह पुस्तक उस पावन परमात्मा के लिए हमारी खोज को केन्द्र में रखती है।

कठिनाइयों, विपत्तियों, दुःख, कष्ट और असमंजस में घिरा व्यक्ति जब किसी परमसत्ता से मार्गदर्शन और सहायता की आशा करता हुआ आस्था की ओर लौटता है तो उस 'रहस्यमय परमसत्ता' की वास्तविकता और खोज भी करता है। यही से प्रश्न उठते हैं 'मैं क्या हूँ'—'ईश्वर क्या है?'

जे. कृष्णमूर्ति व्यापक विवेचन करते हुए स्पष्ट करते हैं कि जब हम अपनी वैचारिकता के माध्यम से खोजना बंद कर दें तभी हम यथार्थ, सत्य अथवा आनंद की अनुभूति कर पाएंगे।

शिक्षा क्या है?

क्या आप स्वयं से यह नहीं पूछते कि आप क्यों पढ़-लिख रहे हैं? क्या आप जानते हैं कि आपको शिक्षा क्यों दी जा रही है और इस तरह की शिक्षा का क्या अर्थ है? इस पुस्तक में जीवन से संबंधित युवा मन के ऐसे अनेक पूछे-अनपूछे प्रश्न हैं और जे. कृष्णमूर्ति की दूरदर्शी दृष्टि इन प्रश्नों को मानो भीतर से आलोकित कर देती है, पूरा समाधान कर देती है। ये प्रश्न शिक्षा के बारे में हैं, किंतु सब एक-दूसरे से जुड़े हैं।

जे. कृष्णमूर्ति की अन्य पठनीय पुस्तकें

आपको अपने जीवन में क्या करना है?

जीवन से जुड़े जीवंत प्रश्नों का गहन अन्वेषण जे. कृष्णमूर्ति का बीसवीं सदी के मनोवैज्ञानिक व शैक्षिक विचार में मौलिक तथा प्रामाणिक योगदान है। यह पुस्तक उनकी विभिन्न पुस्तकों से संकलित अपने प्रकार का पहला संग्रह है, जिसमें विशेषकर युवा वर्ग को शिक्षा तथा जीवन के विषय में कृष्णमूर्ति की विशद दृष्टि का व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध परिचय प्राप्त होता है।

सोच क्या है?

सोचने-विचारने से अपनी समस्याएं हल हो जाएंगी ऐसा मनुष्य का विश्वास रहा है, परंतु वास्तविकता यह है कि विचार पहले तो स्वयं समस्याएं पैदा करता है, और फिर अपनी ही पैदा की गई समस्याओं को हल करने में उलझ जाता है। एक बात और, विचार करना एक भौतिक प्रक्रिया है। कृष्णमूर्ति स्पष्ट करते हैं कि स्वतंत्रता का, मुक्ति का तात्पर्य है व्यक्ति के मस्तिष्क पर आरोपित इस 'नियोजन' से, इस 'प्रोग्राम' से मुक्त होना। इसके मायने हैं अपनी सोच का, विचार करने की प्रक्रिया का विशुद्ध अवलोकन; इसके मायने हैं निर्विचार अवलोकन—सोच की दखलंदाज़ी के बिना देखना। 'अवलोकन अपने आप में ही एक कर्म है', यही वह प्रज्ञा है जो समस्त भ्रांति तथा भय से मुक्त कर देती है।

प्रथम और अंतिम मुक्ति

इस पुस्तक में जे. कृष्णमूर्ति की अंतर्दृष्टियों का व्यापक व सारगर्भित परिचय तथा उनमें सहभागिता का चुनौती-भरा निमंत्रण प्राप्त होता है। कृष्णमूर्ति की शिक्षाओं के विविध सरोकारों का समावेश इस एक पुस्तक में उपलब्ध है जो अंग्रेज़ी पुस्तक 'द फर्स्ट एंड लास्ट फ्रीडम' का अनुवाद है। इस पुस्तक का प्रकाशन 1954 में हुआ था लेकिन आज भी यह पुस्तक कृष्णमूर्ति की सर्वाधिक पढ़ी जाने वाली पुस्तकों में से एक है।